हिन्दी

शीराज़ा

जे.एण्ड के.अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू

द्विमासिक

शीराज़ा हिन्दी

जून–जुलाई, 2002

प्रमुख संपादक

बलवंत ठाकुर

संपादक

श्याम लाल रैणा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू–180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 June-July, 2002
(Hindi)

वर्ष : 38 अंक : 2 पूर्णांक : 157

Editor-in-Chief

BALWANT THAKUR

Editor

SHYAM LAL RAINA
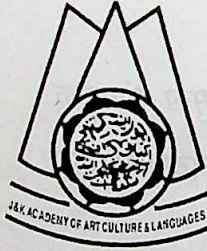
COVER PAGE : Sawan is the Month of Lovers Illustration to the Baramasa Basohli, Early Eighteenth Century.

❖ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं इनसे अकैडमी या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चन्द, जालन्धर-144 004
फोन : 887310

संपर्क : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू एंड कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू।

दूरभाष : 577643, 579576

मूल्य : एक प्रति 10 रुपये, वार्षिक : 50 रुपये

इस अंक में

संपादकीय

संपादकीय

जम्मू-कश्मीर राज्य के संविधान की धारा 146 की सूची VI के अन्तर्गत राज्य में बोली जाने वाली भाषाओं में से केवल नौ (डोगरी, हिन्दी, कश्मीरी, उर्दू, लद्दाखी, पंजाबी, पहाड़ी, दर्दी और गोजरी) को मान्यता प्रदान की गई है। मान्यता प्राप्त इन भाषाओं के प्रचार-प्रसार का कार्य राज्य अकैडमी करती है। प्रादेशिक भाषाओं के लोक साहित्य के संकलन, संपादन एवं प्रकाशन का कार्य हो, लेखकों द्वारा लिखी गई पुस्तकों पर अनुदान देने की बात हो, प्रकाशित साहित्य पर वार्षिक पुरस्कारों का वितरण हो अकादमी प्रत्येक मान्यता प्राप्त भाषा के उत्थान के लिए कार्यरत है।

अकैडमी की ओर से राज्य की प्रत्येक भाषा के लेखक को मंच प्रदान करने हेतु 'शीराज़ा' पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है।

पिछले दिनों अकैडमी द्वारा 'शीराज़ा गोष्ठी' के नाम से सर्वभाषी साहित्यिक गोष्ठियों का सिलसिला शुरू किया गया। इन गोष्ठियों में प्रायः सभी भाषाओं के लेखक अपनी रचनाएं पढ़ते हैं। लेखकों एवं बुद्धिजीवियों ने इन गोष्ठियों को बहुत सराहा है। हमें आशा है कि यदि लेखकों का सहयोग इसी प्रकार मिलता रहा तो 'शीराज़ा गोष्ठी' सार्थक सिद्ध होगी।

—श्यामलाल रैणा

डोगरी लोक रंग

डोगरी लोक गाथाओं में ऐतिहासिक तत्व

❑ डॉ० भारत भूषण

डोगरी लोक गाथा बारों और कारकों में स्थानीय एवं प्रांतीय महत्त्व की घटनाओं का पारम्परिक वर्णन है, जिनको किसी व्यक्ति अथवा नायक नायिका के जीवन चरित से रचा गया है। यह गाथा काव्य हमारे क्षेत्र के नायक नायिका की आत्मकथा मात्र ही हैं। भले ही इनका विषय वास्तविक एवं ऐतिहासिक घटनाएं हैं तथा इनका सम्बन्ध जीवित व्यक्तियों से रहा है। जिन्होंने गाथाओं में वर्णित सुख दु:ख का अनुभव किया है। अत: कहा जा सकता है कि यह गाथा काव्य स्थानीय इतिहास का हिस्सा हैं परन्तु अन्तर यह है कि इन्हें शुद्ध ऐतिहासिक घटनाओं के रूप में वर्णित करने के अतिरिक्त किसी व्यक्ति विशेष की आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। क्योंकि गाथाकारों का उद्देश्य इतिहास लिखना नहीं था अपितु नायक या नायिका के व्यक्तित्व को लोकप्रिय रूप में प्रस्तुत करना तथा उनके जीवन-चरित्र की घटनाओं पर प्रकाश डालना था।

गुग्गा-मंडलीक के जीवन वृत्त का डुग्गर में प्रचलित रूप इसका अपना ही उदाहरण है। गढ़ दुदनेरा के इस बहादुर महान योद्धा ने तुर्कों के विरूद्ध कई सफल युद्ध लड़े और ख्याति प्राप्त करके उत्तरी भारत के इतिहास में कीर्ति अर्जित की। अन्तत: इस प्रयत्न के लिए रणक्षेत्र में उसका गौरवपूर्ण वृत्तान्त मिलता है। परन्तु गाथाकार ने उसके ऐतिहासिक जीवन की घटनाओं का वर्णन न करके उसके व्यक्तित्व के आस पास कल्पना का इन्द्रजाल बुनकर उसे शुद्ध फिक्शन (Fiction) बना दिया। उसे शिकार खेलते हुए गौड़ बंगाल में पहुंचा दिया जो डुग्गर के जनमानस के अनुसार जादूकला का गढ़ है। बस फिर कविकल्पना मचल पड़ी तथा उसे उड़ान के लिए मुक्त गगन मिल गया। वह सभी मध्य युगीन फिक्शन के कारण जैसा कि सैफ-उल-मलूक, शाहनामा, सिकन्दर नामा तथा अलिफ-लैला के तिलिस्मी महल की राजकुमारी आदि तत्वों का सहारा लेकर नीली घोड़ी, कालीबीर, नाहरसिंह, रानी सुरगिलां, पुंरोहित तथा तुलसू आदि पात्रों को जन्म देकर एक अपूर्व तिलिस्मी कथा की रचना करता है। जिसमें गुग्गा के ऐतिहासिक कारनामों का कोई स्थान नहीं है।

इस दृष्टि से डोगरी बारों तथा कारकों के दो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं :-

प्रथम यह कि ये काव्य एक सच्ची तथा ऐतिहासिक घटना को किसी व्यक्ति विशेष को आधार बना करके प्रस्तुत करते हैं। ये व्यक्ति तथा घटना दोनों ही ऐतिहासिक सत्य हैं कोरी कवि कल्पना मात्र नहीं।[1] दूसरा लक्षण है गाथा का काव्यात्मक वर्णन यथार्थ तथ्यों को प्रस्तुत करने के लिए कवि कल्पना ने कहानी में बहुत कुछ काल्पनिक तथा अलौकिक वातावरण को प्रस्तुत करने की कोशिश की। जिसमें नायक के व्यक्तित्व को जन साधारण से भिन्न तथा दैवी गुणों से सम्पन्न दर्शाया जा सके। इस कारण गाथा काव्य में बहुत कुछ ऐसा जोड़ा गया है जो इतिहास से सम्बन्धित नहीं है। परन्तु वह नायक या नायिका को एक असाधारण शक्ति के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। इस उद्देश्य के लिए वह ऐसी तकनीक का सहारा लेता है जो परम्परा से चली आ रही थी। न केवल कहानी स्वरूप की रचना के लिए अपितु वर्णन के लिए भी पहले से प्रचलित भाषा और शब्दावली का ही प्रयोग करता है। अत: इस प्रकार उसकी वर्णन शैली पहले से चली आ रही फिक्शन (Fiction) के प्रवाह का हिस्सा ही प्रतीत होती है।

अधिकांश डोगरी गाथाओं में पात्र का पूरा जीवन चरित्र संक्षिप्त रूप से वर्णित हुआ है। अत: इस चरित्र का आकार-स्वरूप लगभग मिलता जुलता है। क्योंकि ये बार, कारक अथवा गाथा रचयिता परम्परागत रीति और शैली की ही नकल करते थे। बहुतों में तो मौलिकता की भी कमी है। रूपरेखा इस प्रकार थी कि उसके जीवन के चार पांच भाग-जन्म, आरम्भिक शिक्षा, लालन-पालन, विवाह-शादी, घटना-दुर्घटना तथा अन्त में रचना सुनने सुनाने का महात्म्य। जन्म पर प्रसन्नता, एक जैसी बधाईयां। बाबा रणपत की गाथा को जोगी इस प्रकार गाता है-

''कैह्लां ढोल बजैतर बजदे बजदी नैंत बधाई।
नेक बजैंतर बजदे, बज्जी अनन्त बधाई॥''

अत: प्रारम्भिक जीवन और विवाह शादी के वर्णन में पूर्व प्रचलित घिसे-पिटे चौखटे को तनिक हेर फेर करके फिट कर देते हैं। अन्तिम महात्म्य का अंश भी लगभग एक जैसा ही होता है। बावा जित्तो की कारक का रचयिता कहता है-

औतरें दे ओह् पुत्तर दिंदा,
दिंदा बूह्टे लाई।

---

1. *बाबा रणपत, बाबा जित्तो, गुग्गा, हासल देव, बाबा भोत्तो, राजवधु- रुल्ल, बुआ बचनो, दाती लाडो, बाबा भैंरोनाथ, दाता भीखो, दाता विरम, बुआ भाखां, दाता रंगू, दाता हल्लो, बुआ अमरो ते ऐतिहासिक, पुरुष चन्दनदेव, रत्नदेव, डीडो, ज़ोरावर सिंह, हीरा सिंह, बस्ती राम, बजीर राम सिंह और बाबा पटोला, बात्रा सरदारी, शहीद, पीर-चरंगनाथ, सूरज शहीद तथा अन्य बारों और कारकों के रचनाकार इन्हीं की नकल मारते हैं- डोगरी गाथाओं के अनेक अन्य पात्र डुग्गर के इतिहास से सम्बन्धित वर्गों की विश्वासयोग्य परम्पराओं के कारण विशुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, उनसे सम्बन्धित घटना ऐतिहासिक तथ्य है।*

आगे जोगियों-दरेसों ने इसे ही दुहराया है तथा औरों ने 'अन्नें गी अक्खां', 'गुंगे गी जीह्वां' जैसे और फल भी जोड़ दिये हैं। कुछ शहीदी सम्बन्धी बारों में निम्न शब्द भी सुनने में आते हैं-

दो माइयां खूहै पर पानी भरदियां,
दौनें शब्द सुनाई।
एड्डा चरज कदें नेईं दिक्खेआ,
बिजन मुंडी धड़ धाई।

प्रतीत होता है कि मौलिक बारें दो चार ही थीं बाकी थोड़ी बहुत उनकी नकल ही प्रतीत होती हैं। इससे अधिक कवि का उद्देश्य कोई इतिहास वर्णन करना नहीं था अपितु एक ऐसी कथा लोगों के सामनें प्रस्तुत करना था जिसमें रोचकता के समस्त तत्त्व (Elements) होने पर वह इसमें एक जादुई असर पैदा कर सके जो कि फिक्शन (Fiction) की आत्मा कहा जा सकता है। इस प्रयत्न का परिणाम यह देखने में आता है कि डोगरी बारों तथा कारकों में ऐतिहासिक तथ्य बहुत ही गौण होता चला जाता है तथा वर्णनात्मक कवि कल्पना का पक्ष प्रभावशाली ढंग से सामने आता है। यदि हम काव्यकार के उद्देश्यों का विश्लेषण करें तो दो तथ्य हमारे सामने आते हैं। प्रथम लोक कवि का मुख्य प्रयास यह रहा कि वह अपने काव्य को अधिक रोचक और मनोरंजक बना सके। जिस लिए उसने परम्परागत तकनीक का प्रयोग किया एवं इस प्रयास में ऐतिहासिक तथ्य पीछे छूट गया। कवि का दूसरा उद्देश्य कहानी के नायक को एक अलौकिक या दैवी व्यक्तित्व प्रदान करना था जिससे वह नायक के साथ सम्बन्धित स्थान को लोकप्रिय बना सके। इन बारों और कारकों के रचयिता विशेषतया जोगी एवं दरेस ही होते हैं जो अपने नायक के स्थान से जुड़े होते हैं तथा उस स्थान की लोक प्रियता एवं उससे प्राप्त चढ़ावा उनकी आजीविका का प्रमुख साधन था। अधिकांश बारें तथा कारकें इन स्थानों से सम्बन्धित जोगियों एवं दरेसों की ही रचनाएं हैं। इन रचनाओं को गांव-गांव अथवा घर-घर जाकर गाते थे। अपने नायक के स्थान के लिए भक्तों को जोड़ते तथा उनकी मेल लगाते थे। अत: उनका मुख्य उद्देश्य नायक के जीवन चरित्र को ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत करने से अधिक उसे एक रोचक तथा अलौकिक रंग देना था। क्योंकि वह भक्तों तथा जनसाधारण का अत्यधिक शोषण कर सकें और अपनी आजीविका उपार्जित कर सकें।

इन बारों तथा कारकों का विश्लेषण करने के उपरान्त दो बातें प्रत्यक्ष रूप से सामने आती हैं, एक तो यह है कि व्यक्ति तथा मुख्य घटनाएं वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य हैं दूसरा कवि का वर्णन कल्पना तथा अनैतिहासिक वर्णनों का भण्डार है। जिसमें थोड़े बहुत ऐतिहासिक तथ्य भी दब गये हैं।[1] इसमें तीसरा तथ्य भी सामने आता है कि लोकगाथा था लोककाव्य

---

1. *बारों का विश्लेषण करते हुए आर. सी. टैम्पल यह निष्कर्ष निकालता है :*
.... The bardic poem... fastered on the realy historical characters and mixed up with the narrative of bonafide historical facts. Legends of the Punjab Vol. I.P. VI

कागज या पुस्तक रूप में नहीं रखे जाते थे अपितु वे पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक ही चले आते थे। इस प्रकार की परम्परा में भूल चूक स्वाभाविक ही है। हर पीढ़ी के गाथाकारों को अपनी व्यक्तिगतरुचि और योग्यता दर्शाने का समय मिलता रहा है। जिस कारण मूल कथा जो कि आदि कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रची थी आने वाली पीढ़ियों को भूल गई। उन्होंने नए नए वर्णन तथा नई तकनीक का प्रयोग किया। परिणाम स्वरूप ऐतिहासिक तथ्य कहानी से निकल गया।.

विद्वान टैम्पल ने लिखा है कि लोकगाथा के रचयिता ने कहानी को बारों और कारकों की रचनाओं में ऐसी तकनीक का अधिक प्रयोग किया है जो न केवल ऐतिहासिक घटनाओं तथा व्यक्तियों पर आधारित हैं अपितु उन गाथाओं को अनैतिहासिक बनाने की भूल की है। कई बारें पूर्णरूपेण मनघड़ंत तथ्यों पर ही गढ़ ली गई हैं। डोगरी की कुछ प्रसिद्ध कारकों तथा बारों का विश्लेषण करने पर ऐसे प्रयत्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

सर्वप्रथम हम मियां चन्दनदेव तथा रत्नदेव की लोकप्रिय बार का बिश्लेषण करें तो पाएंगें कि डुग्गर के चतुर जोगियों तथा दरेसों ने किस कोरी कवि कल्पना को इस प्रकार के ऐतिहासिक सांचे में प्रस्तुत करने का प्रयास किया कि सुनने वाले यह समझें कि वे कोई इतिहास सुना रहे हैं।

डोगरी गाथाओं में ऐतिहासिक सत्य को ऐतिहासिक व्यक्तियों से जोड़ा गया होता है तथा मूलता वर्णन में भी ऐतिहासिक तथ्यों का प्रयोग किया जाता है।[1] परन्तु समय बीतने के साथ कवि अपनी 'बार' को रोचक एवं लोकप्रिय बनाते। उनका जीवन काल 1740 ई० से 1770 ई० तक रहा।[2] दोनों ही बड़े वीर योद्धा थे तथा उन्होंने मुगलों के विरुद्ध बहुत युद्ध लड़े। विशेष रूप से चन्दनदेव क्रान्तिकारी समाज सुधारक तथा अपने समय का लोकप्रिय नायक भी था। चन्दन देव की बार के रचनाकार कवि ने उसका ऐसा चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। परन्तु उसने काल्पनिक घटनाओं का सहारा लिया तथा उन्हें इस ढंग से प्रस्तुत किया कि वे शुद्ध ऐतिहासिक घटनाएं ही प्रतीत हों।[3]

बार का सारांश है कि चन्दन देव तथा रत्नदेव गुरदासपुर के मुगल गवर्नर असलमबेग के पास गये तथा उसे रणजीत देव को कैद से छुड़ाने की प्रार्थना की। 'खबर तेरी असलमै आई।' असलम वेग ने इस शर्त पर सहायता करने का वचन दिया कि वे मण्डी सुचेतगढ़ को

1. *टैम्पल. आर. सी. द लीजेंड्न आफ द. पंजाब. जिल्द- 1. पृ. 5.*
2. *चन्दनदेव और रत्नदेव की बारों का सार अशोक जेरथ की पुस्तक नमियां डोगरी बारां में दिए गये सारांश पर आधारित हैं।*
3. *वही पृ. 30 (नमियां डोगरी बारां - पृ. 30)*

जीतने में मुगलों की सहायता करें। दोनों जनरलों ने अपने राजा को मुक्त करवाने के लिए यह जोखिम उठाना मान लिया और असलम बेग की मुगल सेना के साथ उन्होंने मण्डी सुचेतगढ़ पर चढ़ाई कर दी –

''बज्जी मुगलेटेआं दे सरियाई,
धड़ो-धड़ सत्थर दित्ते लाई।[2]''

मुगलों का सामना करने के लिए अपने तीन भाईयों को बारी बारी से भेजा तथा उनके मारे जाने के बाद अपने वजीर दानेशाह तथा रामशाह[3] को भी अलग अलग भेजा। इन सभी के मारे जाने के बाद राजा भूपचन्द स्वयं लड़ने के लिए आया। मियों ने उसके विरूद्ध लड़ना उचित नहीं समझा तथा सुलाह की शर्तें रखीं कि भूपचन्द रणजीत देव को मुगलों की कैद से छुड़ाने के लिए रकम दे और रणजीत देव की अधीनता स्वीकार करे। भूपचन्द ने यह शर्तें स्वीकार कर लीं तथा यह कहा कि यह जीत मुगलों की है इसलिए मैं मुगलों की ही अधीनता स्वीकार करूंगा। रणजीत देव जब आजाद होगा तो देखा जाएगा।

यह शुद्ध ऐतिहासिक बार प्रतीत होने वाली रचना शुद्ध काल्पनिक तथ्य पर आधारित है। रचना में रियासत का नाम भी शुद्ध लिखने का प्रयास नहीं किया है। वास्तविक नाम सुकेत है जिसके इतिहास में भूपचन्द नाम का कोई राजा नहीं हुआ। न ही 18 वीं सदी के किसी इतिहास में गुरदासपुर अथवा लाहौर के मुगल जनरल का मण्डी सुकेत पर आक्रमण का उल्लेख मिलता है। यह घटना भी मनगढ़ंत है। असलमबेग भी काल्पनिक नाम है। वस्तुतः उस समय गुरदासपुर कलानौर इलाके का गवर्नर अदीना बेग था।[4] जो बाद में जालंधर का और उसके पश्चात् लाहौर का फौजदार नियुक्त हुआ था। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि चन्दनदेव ने अदीनाबेग के माध्यम से रणजीत देव को छुड़ाने का प्रयास किया था तथा दो लाख रुपये लगान देना माना था जिसमें से एक लाख रुपये लाहौर के वापस राय जकरीया खान के देने के लिए भेजा गया था। परन्तु जकरीया खान को मृत्यु यह धन प्राप्त करने से पूर्व ही हो गई थी। इस लिए अदीना बेग ने यह रुपया भी अपने खजाने में डाल लिया।[1] इन्हीं दिनों रणजीत

---

1. *अशोक जेरथ! नमियां डोगरी बारां - पृं०*
2. *– वही –*
3. *–वहीं – पृष्ठ- 54-55. ''पगड़ी तलवार दस्ते उठाई मिलियै दानशा गी लाई।''*
   ''धन्न रामशाह् जमदी माई, हाथीं खूनी कीता जाई,
   ले हल्लारे मदानै च आई खरा ब, रतनसिंह जायां नाई॥''
4. *चाड़क सुखदेव सिंह : महाराजा रणजीत देव एण्ड राईज एण्डफाल आफ जम्मू किंगडम - पृ. 35*

देव भी बन्धन मुक्त हुए।[2] इन ऐतिहासिक तथ्यों पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बारों के रचयिता ने आवश्यकतानुसार मनघड़त घटनाओं का भी सहारा लिया। वर्णन भी अनैतिहासिक प्रस्तुत किए भूपचन्द ने एक-एक करके अपने भाईयों तथा वजीरों को मरवाया। यह युद्ध नीति के अनुसार विश्वास के योग्य नहीं है।

प्रत्येक राजा बड़ी फौज का मुकाबला बड़ी फौज भेजकर ही करता है। परन्तु रचनाकार का उद्देश्य तो चन्दनदेव और रत्नदेव की वीरता का प्रदर्शन करना था, इसलिए उसने द्वन्द्व युद्ध शैली का ही सहारा लिया जो रामायण महाभारत काल में सम्भव था किन्तु मुगल काल में नहीं।

अन्य बहुत सी ऐतिहासिक बारों में ऐसे ही अनर्थ देखने में आते हैं। डुग्गर में प्रचलित गुग्गा मण्डलीक की बार भी कवि कल्पना का एक विचित्र उदाहरण है। गुग्गा एक व्यक्ति हुआ है। वह बागड़ देश का सामन्त था उसने तुर्कों के विरुद्ध अनेक युद्ध लड़े किन्तु अन्तिम युद्ध में लड़ते-लड़ते शहीद हो गया। जिसकी वीरता के किस्से समस्त भारत में लोकप्रिय हुए हर प्रांत में उस पर बार लिखी गई। डुग्गर में प्रचलित बार में उसे दैवी शाक्ति सम्पन्न एक अलौकिक पुरुष के रूप में दर्शाया गया है जो गौड़ बंगाल को विजित करने के लिए जाता है तथा वहां की रानी के जादू जाल में फंस जाता है। कहानी को गति देने के लिए कवि ने कालीबीर, नाहरसिंह तथा एक जादूई घोड़े को भी चित्रित किया है। जिससे कहानी को एक तिलस्मी रंग देकर शुद्ध कवि कल्पना के नमूने के रूप में प्रस्तुत किया है जिसमें गुग्गा के अतिरिक्त और कोई ऐतिहासिक तथ्य देखने में नहीं आता है। यह बार बहुत लम्बी तथा रोचक है। प्राचीन काल में समस्त उत्तरी भारत के गांव-गांव में बड़ी लोकप्रियं रही है। यहां कवियों ने अपने प्रयत्नों से नये-नये वर्णन तथा अनोखी घटनाओं को जोड़ा है, जिससे यह ऐतिहासिक गाथा मात्र कवि कल्पना ही बन कर रह जाती है। राजा रसालू तथा गुग्गा की बारें इस बात की प्रमाण हैं। इनके विविध रूपों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि कवियों ने समय-समय पर अपनी कल्पना से मनगढ़ंत तथ्यों को जोड़कर इन नायकों सम्बन्धी गाथाओं को शुद्ध Fiction ही बना दिया है। जिनमें नायक के अतिरिक्त और कुछ भी ऐतिहासिक तथ्य दिखाई नहीं देता। हमारे डुग्गर के जोगियों-देरसों की परम्परा निर्धारित करने के लिए इन गाथाओं के थीम के अनुसार ही विश्लेषण सुविधा की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे कृतियां आती है जिनका 'थीम' सामाजिक तथा धार्मिक घटनाएं

---

1. *गुप्ता डॉ० हरिराम! रणजीत इन दी लैटर मुगल हिस्ट्री आफ दी पंजाब - पृ. 64*
2. *चाड़क - सुखदेव सिंह ! महाराजा रणजीत देव एण्ड राईज़ एण्ड फाल आफ जम्मू किंगडमं 1971 पृ. 34-35*
   गुलाब नामा (फारसी) पृ. 91.

हैं। दूसरे वर्ग में वे कृतियां आती हैं जो मौलिक रूप से ऐतिहासिक तथ्यों तथा घटनाओं पर आधारित हैं। यह स्पष्ट है कि दूसरे वर्ग की कृतियों की ऐतिहासिक परम्परा निर्विवाद मानी जा सकती है। इनका आधार, स्वरूप, वर्णनशैली तथा तकनीक तो ऐतिहासिक होनी ही चाहिए। दूसरे वर्ग की कृतियां सच्ची घटनाओं जीवित स्त्री पुरुषों से सम्बन्धित हैं ही परन्तु उनमें कवि कल्पना का इतना scop है कि वे मात्र fiction ही बन गई हैं, उनमें कोई ऐतिहासिक तथ्य मिलना अपवाद ही होगा। इन वर्गों के विश्लेषण से पूर्व यह बात स्पष्ट करना उचित होगा कि योरूप और इंगलैण्ड की बैलेडस् (Ballads) से डोगरी बारों की तुलना की जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि डुग्गर के गाथा रचयिताओं में ऐतिहासिकता का अभाव था। जिसका कारण उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों को भी कवि कल्पना ही बना दिया। जब कि यूरोप के वार्डस (Bards) हर गाथा का आधार खोजकर ही रचना करते थे। इसीलिए इतिहासकार आज तक इन रचनाओं का एक अच्छे ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रयोग करते हैं। इसके मुकाबले में प्रचलित डोगरी गाथाओं तथा बारों में ऐतिहासिक तत्त्व खोजने में निराशा ही होगी क्योंकि वर्तमान 19 वीं सदी की बारों को छोड़कर प्राचीन बारों में बहुत ही घपला देखने में आता है। अन्तर केवल यह है कि ऐतिहासिक बारों में नायक को न तो अलौकिक पुरुष बताने की चेष्टा की गई और न ही उसके साथ किसी दैवी शक्ति को जोड़ा गया है। इन नायक-नायिकाओं को ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में ही चित्रित किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन गाथा या बारों के रचनाकार का उद्देश्य इन नायक नायिकाओं की कहानियों को धार्मिक दृष्टि से लोकप्रिय बनाना नहीं था, न ही उनसे सम्बन्धित किसी स्थान के लिए भक्त बनाना कोई उद्देश्य था। इन कहानियों को सुनाने का मुख्य उद्देश्य स्थानीय इतिहास की कुछ घटनाओं तथा उसमें भाग लेने वाले वीर अथवा नायक की लोगों को जानकारी देना था। इस प्रकार लोगों का मनोरंजन करना था जिन ऐतिहासिक तथ्यों या ऐतिहासिक घटनाओं पर बारें मिलती हैं वह अधिकतर 19वीं सदी की हैं तथा बारों के अतिरिक्त उन घटनाओं का वर्णन कुछ अन्य स्रोतों से भी उपलब्ध होता है। बहुत से लोगों की स्मृति में उनकी याद जिंदा है। इसीलिए रचनाकार अपनी मनमानी करने के लिए स्वतन्त्र नहीं था। फिर भी घटनाओं का वर्णन करने में कवि कल्पना का अधिक प्रयोग हुआ है। कुछ बारों में काल्पनिक घटनाएं भी जोड़ी गई हैं। रचनाकार का मुख्य उद्देश्य इन ऐतिहासिक वीरों की गाथाओं के लिए उचित वातावरण पैदा करना होता था जिसके लिए वह वीर रस प्रधान भाषा तथा वैसी ही स्थिति बनाने के लिए कल्पना का प्रयोग करते थे। इस प्रयत्न में कई बारों में मनगढ़ंत घटनाएं भी वर्णित की गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि डुग्गर का रचनाकार इतिहास को कोई विशेष महत्व नहीं देता तथा यहां तक उसे इससे हटने का अवसर मिलता है वह उसका लाभ उठाता है। ऐतिहासिक गाथाओं का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि रचनाकार ने केवल अधूरा ऐतिहासिक स्वरूप ही रखा और उसके वर्णन में कल्पना के आधार पर रंगों

को भरा है। इसलिए शुद्ध ऐतिहासिक बारें भी रचनाकार के भाव और अनुभव के आधार पर कोई शुद्ध ऐतिहासिक वर्णन नहीं बन सकीं जैसा कि योरूप और इंगलैण्ड की वैलड्स (Balleds) में दृष्टिगोचर होता है। एक बात और स्पष्ट होती है कि जितनी पुरानी बार हो उसमें उतनी ही बनावट और कवि कल्पना का रंग चढ़ा होगा क्योंकि ऐसी बारें बहुत सी पीढ़ियों से गुजरी हैं तथा हर पीढ़ी के कवि ने उसमें कुछ भुला दिया और कुछ नया जोड़ा। इस प्रवाह में बहुत से ऐतिहासिक तथ्य निकलते गए, और अन्ततः शुद्ध ऐतिहासिक कहानियां पंचतन्त्र और अलिफ लैला की कहानियों की तरह बनकर रह गईं। मात्र 19वीं सदी की बारों को इस प्रकार का समय मिला कि उनको केवल एक या दो पीढ़ी से गुज़रना पड़ा है। 20वीं सदी के आरम्भ में बारां सुनने सुनाने का रिवाज़ समाप्त होता गया। इसलिए आधुनिक बारों में अधिक परिवर्तन नहीं हो सके तथा जो अभी तक उपलब्ध हैं उनमें अधिकांश आधार ऐतिहासिक ही हैं।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक बारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा गया तथा कवि कल्पना का विषय बनाया गया। इन बारों में मियां चन्दनदेव तथा रत्नदेव की बार एक रोचक उदाहरण है। यह दोनों व्यक्ति महाराजा रणजीत देव के जनरल थे। मेले-मसादों में लोगों की रुचि का कारण रही इस बार में ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भी इतिहास नहीं मिलता है। डुग्गर की आधुनिक बारों में मियां डीडो, राजा हीरा सिंह, जनरल बाज सिंह, वजीर जोरावर सिंह, राजा ध्यान सिंह, राजा जगत सिंह, वजीर रत्नो, वजीर बस्ती राम, जनरल हुश्यारा आदि अनेक बारें शामिल हैं। इन बारों को वृद्धि तथा विकास का अवसर नहीं मिला इसीलिए इनका आधार शुद्ध ऐतिहासिक है। मात्र action के वर्णन में ही कवि को कल्पना की उड़ान भरने का समय मिला है।

अधिकांश डोगरी बारें कारकें तथा लोकगाथाएं सामाजिक एवं आर्थिक विषयों पर आधारित हैं। जिनमें शुद्ध स्थानीय इतिहास की अत्याधिक मात्रा ही मिलती है। इन में सामान्यतः एक-दो व्यक्ति स्त्री या पुरुष, नायक या नायिका के तौर पर भाग लेते हैं। इन रचनाओं का महत्व स्थानीय सांस्कृतिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में है। इनके अध्ययन से तत्कालीन समाज की सामाजिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का पता चलता है। डुग्गर की लोकगाथाओं और बारों में भांति-भांति के सामाजिक विषयों का प्रयोग किया गया है। इनके थीम भिन्न-भिन्न सामाजिक तथा धार्मिक घटनाओं तथा परिस्थितियों का चित्र प्रस्तुत करते हैं। इनकी विविधता देखकर यह प्रतीत होता है कि यह सांस्कृतिक इतिहास जानने का एक बड़ा स्त्रोत है। परन्तु इनके अध्ययन विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में भी इनका बहुत सा महत्व रचनाकार की पसंद के कारण कम हो जाता है।

जिन विषयों पर यह रचनाएं रची गई है उनमें सती का विषय मुख्य है। प्रतीत होता है कि डुग्गर में सती का रिवाज़ समाज के सभी वर्गों में था। उस समय की शूद्र वर्ण की अनेक स्त्रियों के सती होने की कहानियां भी सुनने में आती हैं। सामन्यत: सती का अर्थ पत्नी का अपने पति की चिता पर जल जाने से ही लिया गया है। पर डुग्गर की सती कारकों में इस प्रकार की सती की एक दो घटनाएं ही किस्से कहानियों के विषय बन सके। यहां अधिक सती कारकें पुत्र की चिता पर माता के सती होने से सम्बन्धित हैं।[1]

बावा भोतो की मां पुत्र की चिता पर सती हुई थी। दाता रघु एक जाट था जिसके पशु एक जमीदार के खेत में चले गये तो ज़मीदार ने गुस्से में आकर उसकी हत्या कर दी। रघु की मां भी उसकी चिता पर सती हो गई। दाता लीखो का किस्सा भी पशु से संबंधित है। वह गांव की गौएं चराता था। उसकी कुछ गौएं निकटवर्ती गाँव में चली जाती थीं जिससे लोगों ने तंग आकर लीखो का वध कर दिया और उसकी मां भी उसके साथ सती हो गई। दाता रणपत की कारक बड़ी प्रसिद्ध है। रणपत की हत्या के उपरान्त उसकी मां भी उसके साथ सती हो गई। पुत्रियां भी अपने पिता साथ सती हुई हैं। जिसका उदाहरण बुआ कौड़ी है जो अपने पिता के बावा जित्तो की चिता पर सती हुई। दाती लाडो का किस्सा भी विचित्र है, उसका मंगेतर दाता बाला बारात लेकर विवाह करने आ रहा था तो रास्ते में डाकुओं ने इसे मार दिया। दाती लाडो को पता चला तो बिना विवाह के अपने होने वाले पति के साथ सती हो गई। इन सती कारकों में एक ऐसी प्रथा के प्रति विश्वास का पता चलता है जो बड़े प्राचीन काल से चलती आ रही है। पर डुग्गर में इसकी पृष्ठभूमि काफी परिवर्तित दिखाई देती है।

इसी प्रकार बहुत सी कारकें लड़ाई-झगड़े तथा अपराध विषयों पर आधारित हैं। इस वर्ग में गांव के लड़ाई-झगड़े, कत्ल तथा चोरी डकैती आदि के विषयों पर बहुत ही बारें सम्मिलित हैं। थोड़े से धन के लालच में भी कत्ल हो जाते हैं। जैसे बावा संदूकची का तथा बावा बग्घी के सम्बन्ध में हुआ है। परिवारिक कलह पर भी मरने मारने की नौबत आ जाती। अत: इस विषय पर भी कुछ कारकें रची गई हैं। बुआ अमरो को उसकी सास ने दहेज के लालच में मूसल से कूट-कूट कर मार दिया तथा बाद में उसकी देहरी बना कर उसकी मान्यता शुरू करनी पड़ी। बुआ भागां (भाखां) भी अपनी सास के जुल्मों से तंग आकर छप्पड़ में डूब मरी।

डुग्गर की कुछ कारकें धार्मिक पुरुषों से सम्बन्धित हैं। उनके प्राण भी धन के लालची लोगों ने ही लिए। बावा भैरोंनाथ अपने समय के प्रसिद्ध धार्मिक सन्त थे। उनके झोले में अधिक

---

1. *डुग्गर में प्रचलित कुछ सती कारकां निम्न है :-*
   1. बावा रणपत, 2. बावा जिनो 3. बावा भोतो, 4. दाता रंगू 5. दाता लीखो, 6. दाता बाला
   7. दाता विद्दो 8. दाती लद्दो, 9. बुआ बचनो, 10. बुआ अमरो।

इनमें अधिकांश बारें माता के अपने पुत्र की चित्ता पर सती होने से सम्बन्धित हैं।

धन होने की सम्भावना में ही लंगेह जाति के लोगों ने उन्हें एक गर्त में दबा दिया था।

बावा शनीचर, बावा ओसूनाथ तथा बावा सिद्ध सुआंखा के किस्से भी ऐसे ही हैं। इन विविध उदाहरणों से ज्ञात होता है कि डुग्गर के रचनाकारों ने समाज के विविध पक्षों को लेकर बारों, कारकों तथा लोकगाथाओं की रचना की। उनके अध्ययन से सामाजिक इतिहास पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना हो सकती है। परन्तु रचनाकारों ने कुछ ऐसे तत्व अपनी रचनाओं में जोड़े जिनसे उनका महत्व बहुत कम हो गया तथा वे केवल किस्से कहानियां मात्र बनकर रह गईं। इन तत्त्वों में महत्त्वपूर्ण तत्त्व अलौकिक तथा अतिमानव (super human) प्रभाव है। इन सच्ची घटनाओं के वर्णन रचनाकारों ने अपनी ओर से कई जादू- टोने की बातें जोड़ लीं। अलौकिकता का प्रयोग किया तथा अपनी रचनाओं को अधिक लोकप्रिय एवं मनोरंजक बनाने के यत्न में वास्तविकता से हट कर कल्पना का ही लड़ पकड़ लिया। ऐसा ही दूसरा तत्त्व कवि कल्पना का प्रयोग है। रचनाकार ने अपनी कला तथा तकनीक को दर्शाने के लिए अपनी कल्पना की उड़ान का सहारा लिया तथा सच्चाई का दामन छोड़ दिया।

बहुत सी बारों में पशु पक्षियों को बोलते एवं मानवों की भांति बातचीत करते दर्शाया है। चील, कौआ, काला कुत्ता तथा घोड़ा आदि पशु पक्षियों को इन वास्तविक घटनाओं का पात्र बनाया और अपने वर्णनों की सच्चाई से परे हटा दिया। परिणाम यह हुआ कि ऐसी बारों एवं लोकगाथाओं से सामाजिक इतिहास के क्षेत्र में जानकारी प्राप्त करना भी उचित नहीं रहा। इस वर्ग की गाथाओं में एक अन्य तत्व का समावेश भी किया गया जो नायक नायिकाओं को देवी-देवताओं के वर्ग में पहुंचाने का प्रयत्न था। जोगियों तथा भाटों (चारणों) का यही प्रयास रहा कि उनकी गाथाओं के नायक लोकोत्तर प्रतीत हों। लोगों को उनमें दैवी अंश प्रतीत हो जिससे जन साधारण उनके प्रति अपनी भक्ति दर्शाने में संकोच अनुभव न करें। उन्होंने अपने नायक नायिकाओं को दैवी अलंकरणों से चित्रित किया उनके इस प्रयत्न में सांस्कृतिक इतिहास को एक बड़ा आघात लगा। इनके प्रयास का अधिक प्रभाव यह हुआ कि लोगों में अनेक कुरीतियां तथा अन्धविश्वास पैदा हो गये। जिनमें सती प्रथा तथा ब्रह्महत्या के कुप्रभाव के प्रति आस्था को दृढ़ तथा लोकप्रिय बनाने में बारों कारकों और गाथाओं का बहुत योगदान रहा। इस प्रभाव को भली भांति समझाने के लिए हम पंजाब और डुग्गर के वातावरण पर दृष्टिपात करें तो डुग्गर में जादू-टोने, सती प्रथा और ब्रह्महत्या जैसे रिवाजों के प्रति आस्था देखने में आती है। जबकि पड़ोसी पंजाब की बारें मुख्यरूप से प्रेम एवं वीर रस की रचनाएं हैं। उनमें अन्धविश्वास के तत्त्व का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके विपरीत डुग्गर की बारें, कारकें और गाथाएं जादू-टोने तथा अन्य अनेक अन्धविश्वासों, अलौकिक तत्वों तथा कवि कल्पना के तत्त्वों के समावेश मात्र हैं। जिनमें वास्ताविकता एवं इतिहास लुप्त हो गए हैं। इस कारण वे किस्से कहानियां मात्र बन कर रह गयीं। इतिहासकारों की दृष्टि में वे सन्देहास्पद हैं। अनेक

वास्तविक पात्र भी सन्देह का विषय हैं। जैसे सिद्धगौरिया के सम्बन्ध में जोगियों ने भिन्न-भिन्न कारकों की रचना की जिससे सिद्ध-गौरिया के व्यक्तित्व एवं उसके ऐतिहासिक व्यक्ति होने पर भी सन्देह उत्पन्न हो गया। परिणामस्वरूप शुद्ध ऐतिहासिक विषयों को छोड़कर शेष कृतियों की ऐतिहासिक परम्परा बड़ी सन्देहास्पद है और उनका विश्लेषण करते हुए उन पात्रों की ऐतिहासिकता पर सन्देह उत्पन्न हो जाता है। इसलिए डुग्गर की बारों, कारकों तथा लोकगाथाओं का शुद्ध इतिहास अथवा सामाजिक इतिहास लिखने का प्रयोग करना कुछ अधिक वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता। यह तो ऐसा प्रतीत होता है कि रचनाकारों ने ऐतिहासिक घटनाओं तथा व्यक्तियों का सहारा लेकर अपनी ही काल्पनिक दुनिया जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत की है।

संपर्क : 1249/6 नानक नगर, जम्मू- 180 004.

"राजनैतिक एकता के लिए सारे देश में हिन्दी और नागरी (लिपि) का प्रचार आवश्यक है"

–लाल लाजपत राय

ऐसे बनीं कश्मीरी कहावतें

❑ प्रो० पृथ्वीनाथ मधुप

अपने जीवन-पथ में पूर्वजों ने जिन उतार-चढ़ाओं को जिया, और जो गहन-गम्भीर अनुभव एवं ज्ञान पाया, जो कथाएँ घटनाएं घटती सुनी-देखी उन्हीं के सार तत्व को कम, असरदार और गूढ़ तथा सार्थक शब्दों में अभिव्यक्त किया। उसी को **कहावत या लोकोक्ति** का नाम दिया गया। इस अभिव्यक्ति की विशेषता यह है कि यह लोकमानस से प्रस्फुटित होती है या एक व्यक्ति के मुंह से निकल कर लोक को इतना प्रभावित करती है कि लगता है यह लोकमानस से ही प्रस्फुटित हुई है। उदाहरण के लिए कश्मीरी काव्य के दो महान् हस्ताक्षरों-लल्लेश्वरी तथा नुन्द ऋषि की कई काव्य-पंक्तियों या इनके अंशों को लिया जा सकता है जो लोकमानस पर इतनी प्रभावी हुई कि कश्मीरी कहावतों के साथ शीरो शक्कर हो गईं।

लोक में लोकोक्तियाँ कब से अस्तित्व में आईं, कहना बहुत कठिन है। हां, यह बात बिना किसी संकोच के कही जा सकती है कि भाषाई अभिव्यक्ति के साथ ही कहावतें भी अस्तित्व में आई होंगी। इनका अस्तित्व आज भी है और कल भी रहेगा। कहावतों के असीम सागर को किसी घड़े में भरा नहीं जा सकता, पर घड़ों में भरने का प्रयास निरन्तर जारी रहना भी चाहिए ताकि अस्त होते-उदित होते सूर्य की किरणें इसे आंशिक रूप से भी सुखा न सकें और इनकी अक्षुण्णता बनी रहे। भावी पीढ़यों के प्रति यह हमारी बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है।

कहावतें जीवन सागर की दीप-स्तंभ हैं। सही रास्ते की पहचान कराना इनका काम है। इसी कारण लोकसाहित्य की यह महत्त्वपूर्ण विधा, लोक साहित्य को समृद्ध बनाती है। यदि कहा जाए कि कहावतें शास्त्र का लोकप्रिय सरलतम सूत्र रूप हैं तो गलत नहीं माना जाना चाहिए। इतना ही नहीं किसी राष्ट्र की जागरूकता एवं प्रबुद्धता आदि की द्योतक भी कहावतें होती हैं। क्रियात्मक राष्ट्रीय दर्शन का आकलन भी कहावतों द्वारा किया जाता है।

कहावतें किसी भी भाषा का एक अनिवार्य उपकरण ही नहीं बल्कि धन सम्पदा से भी कई गुणा अधिक मूल्यवान होती हैं। कश्मीरी भाषा भी इस सम्पदा से मालामाल है। इस सम्पदा को संकलित करने का प्रशंसनीय प्रयास सबसे पहले एक विदेशी पादरी जे०एच० नोवेल्ज़ ने सन्

1884 ई० में कश्मीरी मुहावरों एवं कहावतों का एक कोष तैयार करके किया। इस कोष को लंदन के ट्रुबनर्स (Trubners) ने प्रकाशित किया। नोवेल्ज़ के इस प्रयास के बाद पण्डित सुदर्शन काश्तकारी ने भी अपनी पुस्तक 'विट ऑफ कश्मीरी' में कई कश्मीरी कहावतों को संकलित करके किया। ये दोनों पुस्तकें अंग्रेज़ी में हैं। सुनने में आया है कि श्रीनगर (कश्मीर) के एक स्थानीय प्रकाशक नूर मुहम्मद ने 'काशिरि मिसालुॅ' नाम से कई पुस्तिकाएं प्रकाशित की थीं जिन में अनेक कश्मीरी मुहावरों और कहावतों को संकलित किया गया था। मोतीलाल 'साक़ी' ने भी 'काऽशिर्य लूकुॅ बाऽथ' के चौथे तथा पांचवे भाग में कई कश्मीरी कहावतों को संग्रहित किया है। गुलाम नबी नाज़िर ने 'काऽशिर्य दऽपित्य' नाम से कश्मीरी की लगभग एक हज़ार कहावतों को संग्रहीत किया है जिसे सन् 1988 में प्रान्तीय अकादमी ने प्रकाशित किया। किंतु यह निर्विवाद है कि अभी तक कश्मीरी कहावतों का कोई वृहद संकलन तैयार नहीं किया जा सका। जिसे एक संदर्भ ग्रंथ के रूप में प्रयोग में लाया जा सके। कश्मीरी कहावतों के वैज्ञानिक अध्ययन की भी आवश्यकता है।

अधिकांश कहावतों के पीछे कोई न कोई कथा या घटना होती है। कश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों में इन कथाओं एवं घटनाओं का अलग-अलग रूप मिलता है जिससे कहावतों के शब्द या शब्दों में कुछ भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण के तौर पर कश्मीर के एक क्षेत्र में 'कोऽब कुल कुस? मुठि हुॅन्द तुलुॅकुल।' प्रचलित है और दूसरे क्षेत्र में 'कोऽब कुल कुस छु, बुजिहुन्द तुलुॅकुल।' इस लेख में कश्मीरी की उन कहावतों की पृष्टभूमि को पाठकों तक पहुचाने की कोशिश की गई है जो कश्मीरी भाषा-भाषी समाज की बोलचाल में प्राय: इस्तेमाल की जाती हैं:-

त्यलि तोश यऽलि न्वो'श गरुॅ वाती : तभी प्रसन्न हो लो जब बहू घर में आ जाए।

एक गाँव में अपनी शान बघारने वाली एवं बातूनी औरत थी। जब यह घाट पर पानी भरने जाती तो अन्य पानी भरने वाली औरतों के सामने अपनी शान एवं बड़ाई का बखान करती रहती। ये औरतें इस औरत को बातूनी और बेवकूफ समझ कर इसकी उपेक्षा करती थीं। एक दिन इस औरत के बेटे की शादी की बात चली। अभी बात पक्की भी न हुई थी कि इस बातूनी औरत ने घाट पर पानी भरने वालियों से कहा...........'अरी सुनती हो! ब्याह के लिए हमारे यहां खूब सारी तैयारियां हो रही हैं। बहू के लिए बहुत सारे कपड़े सिलवाये जा रहे हैं। ढेर सारे आभूषण बनवाये जा रहे हैं। बहू क्या है स्वर्ग की परी है। बहुत ही बुद्धिमान और अतीव सुन्दर। इतनी चरित्रवान और बड़ों का आदर करने वाली है कि सभी लोग इसकी तारीफ करते नहीं थकते..........। घाट की औरतें उसकी बातों को सुनती जा रही थी...... और अन्दर ही अन्दर इसके छिछोरेपन पर हसती जा रही थी......... एक औरत से जब रहा न गया तो वह इस शेखी बघारने वाली औरत से कह उठी...........'हवय त्यलि तोश यऽलि न्वो'श गरुॅ वाती' यानी अरी तभी प्रसन्न हो लो जब बहू घर में आ जाए................इस औरत की यह बात सुनने से पहले ही वह औरत सिर

पर पानी का घड़ा रख कर घर की ओर चल पड़ी थी। बाकी औरतें इस औरत के दिखाऊपन और बेमतलब की बातों पर ठहाके मार कर हंसती रहीं। तभी से इस बात ने कि '**त्यलि तोश ऽलि न्वोंश गरॅ वाती**' लोक में एक कहावत का रूप ले लिया।

जब कोई व्यक्ति काम होने से पहले ही खुशी मनाये या शान बघारते हुए ढिंडोरा पीटे तभी उस व्यक्ति को संबोधित करते हुए इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

च़्वोचिवऽरि मंजु छा अऽन्ज़ नेरान: क्या च़्वों चिवरू (एक प्रकार की कचौरी) में से मुर्गाबी निकलती है?

कहा जाता है कि कुलगाम (कश्मीर) में एक हिन्दू नानवाई था जो 'टिकुॅ कांदुर' (टिका लाल नानवाई) के नाम से जाना जाता था। कुलगाम के तहसीलदार ने एक दिन इस नानवाई की दूकान से च़्वो'चिवऽर्य (कचौरी के आकार के परन्तु उससे काफी सख्त तथा उसी की ऊपरी सतह पर गड्ढा सा होता है। जिसके ऊपर सफेद तिल के दाने लगाये गये होते हैं। इसे कश्मीरी जनता बड़े चाव से शीर चाय यानि दूध वाली नमकीन चाय के साथ खाते है।) मंगवाये। कहा जाता है कि 'टिकुॅ कांदुर' की दूकान से मंगवाये गये एक च़्वोचि वऽरू में से जूँ निकल आई। नानवाई न तो अपनी सफाई का ध्यान रखता था और न ही दूकान की सफाई का। तहसीलदार साहब वैसे भी इस नानवाई के मैले-कुचैलेपन से नाराज़ रहते थे पर इस घटना ने आग पर घी का काम कर दिया। तहसीलरदार बहुत गुस्सा हो गये और एक चपरासी को भेज कर 'टिकुॅ कांदुर' को बुलवा भेजा। तमतमाये हुए जब तहसीलदार साहब ने नानवाई से पूछा कि 'क्या बात है कि अब च़्वो'चिवरू में से जूँ निकलने लगी है?' तो टिका नानवई ने जो एक अत्यन्त हंसोड़ व्यक्ति था, झट से उत्तर दिया 'श्रीमान! क्या च़्वो'चिवरू में से कोई मुर्गाबी निकलनी चाहिए थी?' नानवाई के इस उत्तर से क्रोध से भरे हुए तहसीलदार की हंसी छूट गयी और उसने नानवाई को बिना किसी दण्ड के छोड़ दिया।

इस घटना के बाद से इस बात ने कि 'च़्वो'चिवऽरि मजॅु छा अऽन्ज़ नेरान' (क्या च़्वो'चिवरू में से बड़ी मुर्गाबी निकलती है ने एक कहावत का रूप ले लिया।'

जब कोई किसी छोटे काम से बड़े लाभ की आशा रखे तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

काव आऽठि तुॅ कावुॅबचि शेठि : काग आठ और कागपुत्र साठ साल का।

एक कौआ बहुत ही बुद्धिमान था। एक दिन इस कौए ने अपने बच्चे को समझाते हुए

कहा– 'बेटे! याद रखना जब किसी मनुष्य को नीचे झुकते देखो तो एकदम उड़ान भर कर भाग निकलना क्योंकि मनुष्य पर कोई भरोसा नहीं। यह झुक कर ज़मीन पर से ठीकरा उठाता है और वार करता है, हाँ।'

बच्चा यह सुन कर एकदम बड़े बुज़ुर्गाना एवं सयाने अन्दाज़ में बोल उठा– 'जी हाँ, आपने बिल्कुल सही बात कही। पर, यह बताइये कि अगर किसी इनसान ने पहले से ही कोई ठीकरा उठाकर कहीं छिपा रखा हो और उसी से वार करे तो क्या किया जाए! अच्छा यही है कि इनसान को देखते ही अपना बचाव किया जाए। फिर भी, यदि भगवान ही रक्षा न करे तो कोई सूरत नहीं। वास्तव में जब तक अन्न-जल हो तब तक, लाख कोशिश करने पर भी, कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इसलिए इस तरह की चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं है। हाँ, चारों ओर नज़र रख कर सावधआनी बरतना ठीक है।'

कौआ बच्चे की बातों को सुन कर दंग रह गया। पास ही एक और कौआ काक पिता-पुत्र का यह वार्तलाप सुन रहा था उसने कौए से कहा–'अरे तुम साठ साल के हो और यह बच्चा आठ साल का लेकिन यह बात इस समय सत्य नहीं है, इस समय कौआ आठ साल का और काक पूत साठ साल का है।'

यदि कोई कम आयु वाला व्यक्ति ऐसी सलाह दे जो किसी अनुभवी बुज़ुर्ग की सलाह से बहुत बेहतर हो तो उस समय इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

वुछ़ि च़ेर तुं च़ेरस वुछ़ : जल्दी में देर और देर में जल्दी।

किसी शहर में एक धनवान व्यक्ति रहता था। उसका एक इकलौता बेटा था। जब यह धनवान बहुत बूढ़ा हो गया तो उसके मन में विचार आया कि अब मैं किसी भी समय कहीं भी परलोक सिधार सकता हूँ। अब मैं अपने पुत्र का घर बसा देखना चाहता हूँ। मेरी पुत्रवधू बहुत ही बुद्धिमान होनी चाहिए। मेरा पुत्र भी बहुत धीमान है यदि इसे पत्नी भी अक्लमंद मिले तो मेरी मेहनत से कमाई दौलत का सदुपयोग होगा।

एक दिन इस बुज़ुर्ग पिता ने अपने बेटे को बुलाया और पर्याप्त धन देते हुए कहा– 'जा बेटे पूरे इलाके को अच्छी तरह से देख आ। इस बात का भी ध्यान रखना कि कहीं कोई अच्छी जीवन-संगिनी मिले तो उसे अपनाने से नहीं हिचकिचाना।' बेटे ने अपने पिता की कथनी का अर्थ समझ लिया और यात्रा पर चल निकला। पूरे क्षेत्र का चप्पा-चप्पा छान मारा। लोगों के साथ घुला-मिला। बहुत सारी लड़कियों को देखा परखा पर कहीं मन को जीतने वाली लड़की से सामना न हुआ। आखिर यात्रा की थकान ढोते बहुत रात गये एक गाँव में पहुँचा। लगभग पूरा गाँव सो चुका था। केवल एक घर का दिया बल रहा था। युवक उसी घर की ओर गया। दरवाज़ा

खटखटाया। 'कौन है?' अन्दर से एक युवती की आवाज़ आई।

'यात्री हूँ। काफी रात हो गई। शेष रात गुज़ारने के लिए थोड़ी जगह चाहिए।'

युवा लड़की ने आवाज़ से ही अनुमान लगाया कि यह यात्री युवा है खाते-पीते परिवार का तथा बुद्धिमान है। लड़की अपनी मां से बोली- 'माँ, कोई आपत्ति नहीं अगर यह मुसाफिर हमारे घर में रात को रहे।'

उस यात्री को लेटने के लिए उस घर में स्थान दिया गया। जब वह अन्दर आ गया तो माँ-बेटी से पूछने लगा कि घर का मालिक कहाँ है?

'हम देर रात तक इसी कारण जगे हैं। वह काठ के कोयले बनाने जंगल गया है।' जवाब मिला।

'उन्हें इतनी देर क्यों हुई?' मुसाफिर पूछ बैठा।

लड़की बोली-जल्दी की तो देर हुई क्योंकि ('वुछ़ि छुँ चे़र चे़र छय वुछ़') शीघ्रता में देर और देर में शीघ्रता होती है।

'वह कैसे?'

'उन्होंने काठ जला कर कोयले बनाये होंगे। अंगारों पर जल्दी में पानी छिड़क कर कोयले जल्दी-जल्दी बोरी में भरे होंगे और बोरी कन्धे पर उठा घर की ओर चल पड़े होंगे। रास्त में ये कोयले सुलग पड़े होंगे। यदि उन्होंने पहले ही सुलगते अंगारों पर अच्छी तरह से पानी छिड़का होता और ठंडे कोयले बोरी में भरे होते तो वे रास्ते में किसी कठिनाई का सामना किये बग़ैर जल्दी घर पहुंच जाते।'

लड़की का कथन समाप्त होते ही घर का मालिक घर में घुस गया। लड़की की बात सही थी। युवा यात्री युवती की कल्पना-शक्ति पर हैरान रह गया।

इस अमीरज़ादे ने जीवन संगिनी पा ली। वह पौ फटते ही उठ बैठा। इस घर से अपने घर की ओर निकल पड़ा। घर पहुंच कर सारा किस्सा पिता को सुनाया। उचित समय तथा रस्में पूरी करने पर अमीरज़ादे का विवाह इसी युवती के साथ हो गया। यह युवती एक लुहार की बेटी थी।

इसी लड़की की जबान से निकले शब्दों - वुछ़ि चे़र तुँ चे़रस वुछ़ याने जल्दी में देर और देर में जल्दी ने कहावत का रूप ले लिया।

इस कहावत का प्रयांग तब किया जाता है जब कोई काम बिना सोचे-समझे बहुत जल्दी में करे।

* * * * * *

गरुॅ वन्दुॅहय गरुॅ सासा बरुॅ नेरुॅहय नुॅ ज़ांह/नतुॅ करुॅहय डुबुॅडासा फीरिथ यिमुॅहय नुॅ जांहः घर ! हज़ारों घर तुम पर वार दूं और तुम्हारे द्वार से कभी न निकलूं। नहीं तो तुम्हें मटियामेट कर कभी लौट के न आऊं।

एक किसान-लड़का अपने माँ-बाप तथा दो भाइयों के सात एक गाँव में रहता था। यह लड़का अपने पिता की थोड़ी-सी खेती में खुदाई-बुवाई करता और इसके भाई व्यापार करते। व्यापारी भाइयों की खूब कमाई होती थी पर किसान भाई ग़रीब था। पैसे वाले होने के कारण घर में बी व्यापारी भाइयों की खूब पूछ थी। ग़रीब होने के कारण किसान भाई को कोई पूछता न था। सभी उसे डाँटते और बुरा-भला सुनाते रहते थे। डांट-फटकार और बेइज़्ज़ती से तंग आकर यह घर से भाग निकला। कई और मज़दूरों के साथ पंजाब पहुंच गया। पंजाब में इसे बैठे-बिठाये मुफ्त में कौन खिलाता? वहां इसे काफी मेहनत की मज़दूरी करनी पड़ी और आराम कुछ न मिला। उसे उतना आराम भी न मिला जितना उसे घर में बेइज़्त होने और झिड़कियाँ खाने के बाद मिलता। उठने-बैठने-सोने आदि में उसे बहुत ही तकलीफ का सामना करना पड़ा। उसकी अपनी मर्ज़ी चल न सकी। उसे पौ फटते जागना पड़ता और आधी रात को सोना नसीब होता । ऐसी परिस्थितियों में उसे घर की याद सताने लगी। सब कुछ वहीं छोड़ कर वह घर की ओर भागा। घर से अभी थोड़ी दूरी पर ही था कि घर की ओर देखते हुए उसकी ज़बान से अनायास ही निकला :'गरुॅ वन्दुॅहय गरुॅ सासा बरुॅ नेरुॅहय नुॅ ज़ाह/न तुॅकरुॅहय डुबुॅडासा फीरिथ यिमुॅहय नुॅ ज़ांह ! याने-घर ! हजारो घर तुम पर वार दूँ और तुम्हारे द्वार से कभी न निकलूं। नहीं तो तुम्हें मलियामेट कर कभी लौट के न आऊं।

वह घर में घुस गया। माता-पिता भाइयों-भाभियों से क्षमा याचना कर घर में रहने लगा।

यदि कोई घर से दूर घर की मुसीबतों की सोचे बिना घर की सुख-सुविधा की ही सोचे तो उस समय इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

हऽस्य दरन नुॅ वावुॅ तुॅ बुजि कऽडुॅना कपसः (इस) हवा में हाथी टिक नहीं सकते तो क्या बूढ़ियां क़पास बीन सकती हैं?

सिखों के शासनकाल में कश्मीर के किसी गाँव में सरकार ने अपनी ज़मीन के किसी टुकड़े पर कपास की बुवाई करवाई थी। जब डोडों से कपास फूट पड़ी तो सरकार ने कपास बीनने के लिए गाँव की जवान-बूढ़ी औरतों को बेगार पर लगा लिया। जब ये औरतें डोडों से कपास अलग कर रही थीं तो अचानक तूफान आ गया। औरतें बचाव के लिए अपने-अपने घरों की ओर भागने लगीं। पर, अधिकारी ने जो शासन की ओर से इस काम की निगरानी के लिए नियुक्त किया

गया था, इन औरतों को भागने नहीं दिया। हवा की गति बहुत तेज़ होती जा रही थी। पेड़ समूल उखड़ रहे थे, मकानों की छतें गिर रही थीं। इस सबकी अनदेखी करते हुए अधिकारी ने बेगार में लगी औरतों से कहा–'कपास जल्दी-जल्दी इकट्ठी करो नहीं तो यह सारी कपास तूफान से छितर जायेगी। सरकार का नुकसान होगा तथा सरकार बुरा मानेगी।' यह सुन कर अधिकारी से एक बुढ़िया ने कहा– हऽस्य दरन नुं वावुं बुजि कड़ना कपस याने इस प्रभंजन में हाथी टिक नहीं सकते तो क्या बूढ़ियाँ कपास बीन सकती हैं? कहा जाता है कि उस बुढ़िया का यह कथन ही तब से एक कहावत बन गया।

जब किसी काम को करने के लिए समय उपयुक्त न हो तो इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

ज़ऽर्य बूज़ बहि वुँहुर्य बड़शाह मूदः बहरे ने बारह साल बाद सुना कि बड़शाह मर गया।

मुसलिम शासन काल में बड़शाह नाम का एक सुलतान कश्मीर पर राज करता था। शरू शरू में यह सुल्तान भी अपने पूर्व सुल्तानों की राह पर ही चला। इसी दौरान इसके बदन पर एक बहुत ही ज़हरीला फोड़ा निकला। शाही तबीबों और बाकी हकीमों के इलाज ने फोड़े पर कोई असर न किया। आखिर में एक कश्मीरी पण्डित वैद्य श्री भट्ट को ढूंढ कर (क्योंकि विकट परिस्थितियों की मार सहते अपनी जन्मभूमि छोड़कर देश के अन्य भागों में पलायन करने के लिए मजबूर हो गये थे।) निकाला गया और इनसे सुल्तान का इलाज कराया गया। श्री भट्ट के इलाज से सुल्तान शीघ्र ही भला-चंगा हो गया। इस इलाज से सुल्तान का ह्रदय परिवर्तन भी हो गया। उसने कश्मीरी हिन्दु जनता के प्रति उदारवादी नीति को अपना लिया और अपने को रचनात्मक कामों में लगा लिया। इन कामों ने उसे बहुत लोकप्रियता दी तथा अच्छे शासकों में गिना जाने लगा।

इसी बड़शाह नामक सुल्तान का एक बहरा नौकर था। बड़शाह इस बहरे नौक़र को बहुत ही चाहता था। बाकी नौकर इस बहरे से काफी जलते थे। एक दिन इन नौकरों ने बहरे को नीचा दिखाने के लिए एक षड्यन्त्र रचा। उसे कहा गया कि सुल्तान का हुक्म है कि तुम फिलहाल घर पर ही रहो। जब सुल्तान को तुम्हारी ज़रूरत आन पड़ेगी तो उनका हुकुमनामा लेकर कोई तुम्हारे घर आ जायेगा। बहरे को लगा कि कल ही सुल्तान को मेरी ज़रूरत महसूस होगी और कोई हुकुमनामा लेकर मेरे घर आ जायेगा। यही सोच कर बहरा नौकर घर चला गया। षड्यन्त्रकारी नौकरों ने सुल्तान को सूचित किया कि बहरे को घर पर कोई बहुत ज़रूरी काम था इसी लिए कुछ दिनों के लिए वह घर चला गया। बहरे को घर गये चार-पांच दिन ही हुए थे कि सुल्तान इस जहानि फानी से उठ गया।

बहरे को पक्का विश्वास था कि सुल्तान उसे ज़रूर बुलवायेगें प्रतीक्षा करते-करते बारह साल बीत गये। बहरा हुकुमनामे की प्रतीक्षा करता रहा! जब इतने लम्बे इन्तिज़ार के बाद भी बुलावा न आया तो बहरे ने सोचा कि शायद सुल्तान की तबीयत ठीक नहीं होगी। उसने सुल्तान के बारे में लोगों से पूछताछ करनी शुरू की। उसे बताया गया कि सुल्तान बारह साल पहले इस जहान से चल बसे हैं। बहरा अफसोस करने लगा, रोने लगा। लोगों ने उसे समझाया कि अब रोने और अफसोस करने से कोई लाभ नहीं। सुल्तान को गुज़रे बारह साल हो गये तब तुम रोये नहीं अब क्यों रोते हो?

इसी घटना ने इस कहावत को कि 'ज़ऽर्य बूज़ बहि-वुॅहुॅर्य बड़शाह मूद' याने बहरे ने बारह वर्ष बाद सुना कि बड़शाह मर गया-को जन्म दिया।

यदि कोई व्यक्ति किसी घटना या सूचना आदि के बारे में देर से सुने तो उसके लिए इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

खरवाल्यो खर हा मूदुय लो'ट हा रूदुय अथस क्यथः गधे के मालिक! तुम्हारा गधा मर गया और उस की पूंछ तुम्हारे हाथ में रह गई।

एक था कुंजड़ा। वह अपने गधे पर सब्ज़ियां लाद कर निकट के गाँव में बेचने जाता। वह सब्ज़ी पैसों के बदले नहीं बल्कि दानों (प्रायः धान) के बदले बेचता। एक दिन इसकी बहुत सारी सब्ज़ी बिक गई और बदले में काफी सारा धान आ गया-जितना भार वह घर से गधे पर लाद के लाया था उससे दुगुना-ढाई गुना! पीठ पर अधिक भार के कारण गधा चलने में असमर्थ हो रहा था, पर कुंजड़ा उसे चाबुक मारता ही जा रहा था और उसे चलने पर विवश करता जा रहा था। इस पर तुर्रा यह कि कुंजड़े ने गधे को दिन भर कुछ भी खिलाया-पिलाया न था। बहुत ही कठिनाई से चलते तथा चाबुकों की मार सहते जब गधा थक कर चूर हो गया तो भार-सहित गिर पड़ा और कुछ क्षणों में ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये। कुंजड़ा फिर भी उसकी टाँगों पर चाबुक पर चाबुक मारता ही जा रहा था। कभी दुम खींचता लातें मारता और उसे खड़ा करने की कोशिश करता। बेचारा गधा चूंकि ठंडा पड़ गया था कैसे उठता। गाँव के लोगों ने जब यह देखा तो कुंजड़े को चिड़ाते हुए एक साथ चिल्लाते हुए कहने लगे :-

खर वाल्यो खर हा मूदुय ल्वो'ट हा रूदुय अथसक्यथ' याने गधे के मालिक तुम्हारा गधा मर गया और उसकी पूंछ तुम्हारे हाथ में रह गई।

जब किसी को किसी काम से बहुत लाभ की उम्मीद हो और उसे कुछ प्राप्त न हो अथवा बहुत कम प्राप्त हो तो उस व्यक्ति के प्रति व्यंग्य से यह कहावत कही जाती है।

* * * * * *

ख्वो 'जि ब्यूठ वान द्यगुॅल्यव सान : ख़्वाजा दुकान पर मटकों समेत बैठ गया।

कहा जाता है कि किसी गाँव में एक व्यक्ति ने दुकान डाल दी। इस व्यक्ति को न तो दुकानदारी का कुछ अनुभव था और ना ही इसके गुर मालूम थे। इसके मित्रों ने इसे सलाह दी थी कि 'मित्र, तुम्हें व्यापार का क ख भी मालूम नहीं अत: यह धंधा न अपना कर कुछ और काम कर लो।' लेकिन वह नहीं माना–इस पर दुकानदारी का भूत बुरी तरह से सवार जो हो चुका था। इसने कई लोगों को अपनी-अपनी दुकान की गद्दियों पर शान से बैठे और माल बेचते हुए देखा था। इन्हें देखते हुए उसे भी गद्दी पर शान से बैठने और धन कमाने का शौक़ था। इसके पास कुछ रक़म थी और कुछ रक़म दोस्तों–रिश्तेदारों से उधार ली। इन रुपयों से इसने चाय-चीनी-नमक आदि ख़रीद लिया और अपनी दुकान सजा ली। एक पखवाड़े या एक महीने में ही इसका सारा माल उधार खाते में चला गया। जिन मटकों में माल भरा था वे खाली हो गये। घाटा ही घाटा हुआ। इसकी इस शोचनीय दशा को देखते हुए इसके मित्र तथा अन्य गाँव वाले कहने लगे:-

'ख्वो 'जि ब्यूठ वान द्यगुॅल्यवसान' याने ख़्वाजा दुकान पर मटकों समेत बैठ गया।

यदि किसी व्यक्ति को किसी मनचाहे काम में लाभ नहीं होता तो लोग व्यंग्य से उसकी ओर इंगित करते हुए इस कहावत का प्रयोग करते हैं।

* * * * * *

द्वदुॅक्य द्यार द्वदस तुं आबुॅक्य आबस : दूध के पैसे दूध को और पानी के पानी को।

एक ग्वाला था। यह हमेशा ग्राहकों को बिना पानी के शुद्ध दूध दिया करता था। कई और दूधिये भी थे, जो हमेशा ग्राहकों को पानी मिला दूध बेचते और ज़्यादा पैसा वसूलते। शुद्ध दूध बेचने वाला बहुत समय से इनकी यह हरकत देखता चला आ रहा था। एक दिन इसके दिमाग़ में भी दूध में पानी मिला कर अधिक पैसे कमाने की बात आ गई। फिर क्या था पांच सेर दूध में दो सेर पानी मिला कर इसे सात सेर कर दिया। ग्राहकों को जब यह दूध मिला तो उन्हें दूध पतला लगा। पर, दूधिये से कुछ कहा नहीं क्योंकि उन्हें उस पर काफी भरोसा था। कई दिनों तक दूधिया दूध में पानी मिलाता रहा। ग्राहकों का शक बढ़ता गया पर फिर भी उन्होंने दूधिये से कुछ न कहा। एक दिन दूधिया आया ही नहीं। ग्राहक दूध को तरसते रह गये। जब दूसरे दिन दूधिया दूध लेकर आया तो ग्राहकों ने उससे कल न आने का कारण मालूम किया। उन्हें मिलावटी दूध मिलने का गुस्सा था ही तिस पर कल दूध न मिलने का गुस्सा भी था। दूधिये ने अपनी ओर से सफ़ाई पेश करते हुए कहा–'कल जब मैं नाला पार कर रहा था मेरा पैर फिसल गया। दूध का घड़ा फूट गया और सारा दूध पानी में बह गया। मैंने हिसाब लगाया कि दूध में मैंने जितना पानी मिलाया था घड़े के समेत मेरा उतना ही नुकसान हो गया इसलिये दूध का दूध और पानी

का पानी में ही मिल गया अत: द्वर्दुक्य द्यार द्वदस तुॅ आबुक्य आबस।

यदि कोई बददियानती से लाभ उठाने की कोशिश करे और उसे नुक्सान ही उठाना पड़े तो उसके प्रति इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

को'ब कुलकुस? मुठि हुंद तुलुॅकुल : कुबड़ा वृक्ष कौन? मुठुओं का तूत का वृक्ष।

एक कश्मीरी पण्डित, गोपाल मुठ (मुठू) के बाग़ में एक तूत का वृक्ष भी था। यह वृक्ष काफी टेड़ा मेड़ा एवं कुबड़ा था। आसपास के सभी बच्चे इस वृक्ष पर, झुका होने के कारण, दौड़ते हुए चढ़ते और शोर मचाते रहते थे। गोपाल को बच्चों की चीखो पुकार से बहुत चिड़ होती। आसपास के निवासी भी बच्चों के शोरोगुल सें वहुत तंग थे। संक्षेप में वह वृक्ष गोपाल तथा बाग़ के आसपास रहने वालों के लिए एक ख़ासी मुसीबत था। बच्चे एक दूसरे से जब पूछते कि 'हम आज कहां खेलें तो जवाब मिलता 'गोपाल काका के तूत के वृक्ष पर' छोटे से छोटा बच्चा भी इस वृक्ष पर आसानी से चढ़ता। इसके कच्चे-पक्के तूत खा लेता, पत्ते तोड़ता और टहनियों से लटक कर झूला झूलता। इसी पेड़ के कारण यह कहावत बन गई कि 'को'ब कुल कुस? मुठि हुन्द तुलुॅ कुल'याने कुबड़ा वृक्ष (जिस पर चढ़ना आसान है) कौन-सा है? मुठुओं का तूत का वृक्ष।

जब कोई व्यक्ति इतना शरीफ हो कि कोई भी आदमी उस पर चढ़ बैठे तो इस सन्दर्भ में इस कहावत का प्रयोग किया जाता हैं।

इस कहावत का एक और रूप—'को'ब कुल कुस? बुजि-हुन्द तुलुॅकुल'—भी कश्मीर के मराज़ इलाके में प्रचलित है। यहाँ तूत के वृक्ष को किसी बुढ़िया से संबद्ध किया गया है। बाकी कहानी लगभग उपरोक्त जैसी ही है।

* * * * * *

नफ़ुॅहुक छु तसुॅलाह गाटुॅ मो पाव/ हांगुॅलो करुॅयो शुपि सूॅत्य वावः लाभ की कोई आशा नहीं कहीं घाटा ही न पड़ जाए। रे हांगुल (बारहसिंगे) तुम्हें छाज से हवा करूँ।

कुलगाम तहसील के किसी गाँव में सर्दियों के दौरान न जाने कैसे एक हांगुल (बारहसिंगा) आ गया। इस गांव के वासियों ने इससे पहले हांगुल कभी न देखा था। इसे देख कर वे चकित हो गये और एक अजीब जीव समझ कर इसे पकड़ लिया। गाँव वालों ने फैसला किया कि इस अजीब एवं नायाब जन्तु को महाराजा साहब को भेंट में दिया जाना चाहिए। इसे पाकर महाराजा साहब निश्चित ही हम पर प्रसन्न होंगे और हमें मालामाल कर देंगे। गांव वालों ने अपने गांव के सयानों को यह काम सौंप दिया। सयानों ने एक पालकी मंगवाई। इसे सजाया

और इसके अन्दर हांगुल को बांध कर रखा। यात्रा के लिए अपने खाने-पीने का सामान बांध कर अलसुबह शहर की ओर, हांगुल की पालकी कन्धों पर उठाये, चल दिये। राजभवन पहुंच कर महाराजा को सूचित करवाया और उनसे मिलने की आज्ञा चाही। यह भी सूचित करवाया कि उन्होंने अपने राजा के लिए एक दुर्लभ उपहार लाया है। महाराजा ने मिलने की आज्ञा दे दी। जब महाराजा ने हांगुल को देखा तो आग बबूला हो गये। कहा, तुम लोगों ने बड़ा अपराध किया है। यह सरकारी पशु है इसे पकड़ कर तुम लोगों ने अच्छा नहीं किया है। अब तुम लोग मेरे लिए इसे भेंट के रूप में लाये हो इसलिए तुम्हें केवल एक रात के लिए ही कारागार में डाल दिया जायेगा। तुम्हें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हांगुल को कोई कष्ट या नुकसान न पहुंचे। यदि इस हांगुल को कुछ हुआ तो तुम लोगों को कड़ी से कड़ी सज़ा दी जायेगी।

इन सयानों को रात भर क़ैद में रखा गया। हाँगुल तथा इन सयानों के लिए राशन-पानी दिया गया। ये लोग रात भर हांगुल की रखवाली करते रहे और इसे हवा करते रहे ताकि इसे कोई कष्ट न पहुंचे, सवेरा होने तक स्वस्थ रहे। ये लोग हांगुल को हवा करते रहे और गुनगुनाते रहे:- 'नफ़ुॅहुक छु तसुलाह गाटुॅ मो पाव। हांगुॅलो करुॅयो शुपि-सूॅत्य वाव' याने अब लाभ की कोई चिन्ता नहीं, कही घाटा न पड़वा देना। रे हागुंल तुम्हें सूप से हवा करें।

सवेरा होने पर इन्हें मुक्त किया गया और हांगुल को जंगल भेज दिया गया।

अगर कोई व्यक्ति लाभ के लिए कोई काम करता है, पर, जब उसे लगने लगता है कि लाभ के बदले नुकसान ही न हो उस समय वह व्यक्ति या कोई और इस कहावत का प्रयोग करता है।

* * * * * *

अऽक्य च़ऽट सुम सास गव क्वलि : एक ने पुलिया तोड़ी एक हजार डूब गये।

बहुत समय पहले बहुत सारे लोग एक साथ मिलकर किसी तीर्थ यात्रा पर जा रहे थे। इस भीड़ में एक ऐसा आदमी भी था जिसका दिमाग़ बहुत ही खुराफाती एवं नकारात्मक सोच का था। वह हमेशा बुरा करने और बुरा कहने के बग़ैर न रह सकता था। अपने आगे एक गहरी और तेज़ बहाव वाली नहर देककर उसके खुराफाती दिमाग में कुछ बात आ गई। वह तेज़ चलते हुए भीड़ से आगे निकल गया और नहर के किनारों को जोड़ने वाली लकड़ी की पुलिया को पार कर गया। पार जाकर उसने अपने साथ रखी कुल्हाड़ी से पुलिया के आधार बने शहतीरों को काट दिया। पुलिया गिर पड़ी और तेज़ बहाव ने इसे बहा दिया। लोगों की भीड़ जो काफी समय से इस तीर्थ यात्रा पर निकली हुई थी यहां से लौट जाने के लिए तैयार न हुई। अन्त में दो-चार हिम्मत वाले आदमी नहर में उतरे। इनकी देखा-देखी और कई आदमी नहर में उतर गये। जब ये लोग मंझधार में पहुंचे तो पानी की गहराई और तेज़ गति के कारण अपने आपको संभाल न सके और सब के सब डूब कर बह गये।

इसी घटना पर लोक में यह कहावत प्रचलित हो गई कि 'अऽक्य च़ऽट सुम तुॅ सास गव क्वलि' याने एक ने पुलिया तोड़ी और एक हज़ार डूब गये।

एक व्यक्ति जब कोई गलती करता है और बहुत सारे उस ग़लती की लपेट में आ जाते हैं तभी ग़लती करने वाले के प्रति इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

ब्राऽर्य नियि माज़ दऽज, च्य तुॅ म्यऽ हर च़ऽज : बिल्ली रूमाल में बंधा गोश्त ले गई तुम्हारा मेरा झगड़ा काहे का।

एक ग्रामीण की शादी थी। दूल्हा जब बारात लेकर ससुराल पहुंचा तो उसके ससुराल वालों ने बारातियों की खूब ख़ातिर की। वाज़ुॅवान का तरह-तरह का गोश्त खिलाया। बारात में दो लंगोटिया दोस्त भी थे। इन्होंने एक ही 'त्राऽम्य' (ताम्बे की कलई की गई बड़ी थाली-सी जिस में प्राय: चार आदमी इकट्ठे खाना खाते हैं। यह रिवाज़ कश्मीरी मुसलमानों में प्रचलित है।) में खाना खाया। पेट भर गोश्त के व्यंजन खाने के बाद जो मांस 'त्राऽम्य' में बचा उसे इन दोस्तों ने एक ही रूमाल में घर ले जाने के लिए बांध लिया। मांस के दो हिस्से करके ये दो रूमालों में बान्ध देते पर रूमाल एक ही के पास था। सोने से पहले इन दोनों ने गोश्त की बटाई भी ज़बानी-ज़बानी कर ली। एक ने कहा मुझे अधिक गोश्त मिलना चाहिए क्योंकि मैंने कम खाया और ज़्यादा उठा दिया। दूसरा बोला अरे नहीं तुम ने ज़्यादा खाया और बहुत कम रूमाल में डाल दिया इसलिए अधिक गोश्त मुझे ही मिलना चाहिए। हालांकि मारे शर्म के ये दोनों बहुत धीमी आवाज़ में यह वार्तालाप कर रहे थे फिर भी इनकी ये बातें एक तीसरे आदमी ने सुन लीं और वह इनसे कहने लगा- 'अरे झगड़ते किस लिए हो। रूमाल में बंधा गोश्त मेरे हवाले कर दो सुबह मैं हिस्से करके दे दूंगा। आओ इसे यहाँ इस आले पर रख देते हैं।' दोनों दोस्तों ने चूंकि ठूंस-ठूंस कर खाया था इसलिए जल्दी ही घोड़े बेच कर सो गये। इनके सोने पर उस तीसरे आदमी ने रूमाल आले से उठा लिया इसे खोला। सारा गोश्त चट कर गया और खाली रूमाल अपनी जेब में डाल कर सो गया। सुबह जब दोनों दोस्त जागे आले पर नज़र डाली तो रूमाल नदारद थी। वे एक दूसरे पर आरोप लगाने लगे। इनकी चख-चख से तीसरे की नींद उचट गई। वह भी उठ बैठा। इनसे कहने लगा 'अरे! अब क्या बात है?' इन्होंने गोश्त बंधी रूमाल के गायब हो जाने की बात कही। तीसरे ने तनिक इधर-उधर देखा और कहा-'लगता है कि गोश्त रूमाल के साथ ही बिल्ली ले गई है। यह अच्छा ही हुआ तुम दोनों हमेशा से आपस में गहरे दोस्त रहे हो। अब काहे को एक दूसरे से बिगाड़ते हो। अब एक दूसरे से यही कहो कि 'ब्राऽर्य नियि माज़ दऽज्य च्य तुॅ म्यऽ हर च़ऽज्य' याने बिल्ली रूमाल में बन्धा गोश्त ले गई तुम्हारा-मेरा झगड़ा काहे का।

जब कोई चीज़ ज़ाया हो या दो गुटों के झगड़े का कारण बने या कोई तीसरा उसका

मालिक बन कर ले जाए तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

छानुॅ गंड़ तुॅ दस्तार पानुॅ रोज़ तुॅ व्वड्डुॅ नो'न : बढ़ई को पगड़ी बन्धवा स्वयं नंगे सिर रह।

एक था साधारण-सा मध्यवर्गीय व्यक्ति। इसने खाने-पहनने आदि से थोड़ी-थोड़ी कटौती कर कुछ रक़म जमा की थी। इस रक़म से उसने एक छोटा-सा मकान बनवाया। यह व्यक्ति न नंगे सिर रहता और न टोपी पहनता बल्कि इसे दिन-रात पगड़ी पहने रहने की आदत थी। जब इस व्यक्ति का मकान पूरा होने जा रहा था तो (कश्मीर की) प्रथा के अनुसार बढ़ई को एक पगड़ी भेंट कर उसे बंधवानी थी। मकान बनवाने वाले के पास अब कोई रुपया-पैसा न बचा था इसलिए बाज़ार से नई पगड़ी खरीद कर बढ़ई को भेंट करने में असमर्थ था। लेकिन अपनी शान भी बरक़रार रखना चाहता था अत: उसने अपने सिर से पगड़ी उतारी धुलवा एवं कलफ लगवा के बढ़ई को भेंट की। बढ़ई को अब इस व्यक्ति की आर्थिक दशा के बारे में मालूम हो चुका था इसलिए उसने पगड़ी लेने से यह कहते हुए इन्कार किया कि जब आप की आर्थिक दशा फिर से ठीक हो जायेगी उसी समय मुझे पगड़ी दे दीजिये। उसके अन्य शुभ चिन्तकों ने भी उसे यही राय दी मगर वह व्यक्ति अपनी शान छोड़ने के लिए राज़ी न हुआ। इसी बात पर यह कहावत लोक में प्रचलित हो गई कि 'छानुॅ गंड़ तुॅ दस्तार पानुॅ रोज़ तुॅ व्वड्डुॅनो'न 'याने बढ़ई को पगड़ी बन्धवाओ और स्वयं नंगे सिर रहो।

कोई व्यक्ति जब अपनी आवश्यकताओं को एक तरफ छोड़ कर अपनी आन रखने के लिए कोई कदम उठाये तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

दीनुक थम छुम सीनस प्यठ कूट्य हा मोरुस ख्वदायो: दीन का स्तंभ मेरे सीने पर है अय ख़ुदा इस लम्बे-मोटे लट्ठ ने मुझे मार डाला।

कहा जाता है कि एक दिन एक नेता ने अपना कोई उल्लू सीधा करने के लिए एक विशाल जलूस निकलवाया। चूंकि अनपढ़-नामझ एवं सीधे साधे ग़रीब जन मज़हब के नाम पर जल्दी बहक जाते हैं तथा बिना सोचे-समझे कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं इसलिए इस जलूस के लिए भीड़ जुटाने की खातिर इसे भी मज़हबी रंग दिया गया। जनता बड़े जोश से जलूस में शामिल हो गई। नारे लगाये जाने लगे और जनता ऊंची आवाज़ में बड़े जोशीले लहज़े पर नारों का जवाब देने लगी। किसी आपत्तिजनक नारे पर एक जगह पुलिस ने जलूस पर 'लाठी चार्ज' किया। जन एक दूसरे को धक्का देते गिरते-गिराते अपने को डंडों के प्रहारों से बचाने लगे तथा इधर-उधर भागने लगे। इसी अव्यवस्था के बीच एक आदमी को भीड़ ने ज़ोरदार धक्का दिया। बेचारा धड़ाम से गिर पड़ा। इसके हाथ में एक झंडा दिया गया था और कहा गया था कि अगर

तुम्हें जान भी कुर्बान करनी पड़े इस झंडे को ज़मीन छूने नहीं देना। झंडे (अलम) को ऊंचा रखना बहुत ही सवाब (पुण्य) का काम है। गिरते-गिरते भी इस आदमी ने झंडे को पकड़े ही रखा, पर संतुलन खो जाने से इस झंडे का लम्बा लठ उस के सीने में उतर गया। लठ के निचले भाग को ज़मीन में गाढ़ने के लिए नुकीला बनाया गया था। जब झंडे का नुकीला भाग इस आदमी के सीने में उतर गया तो वह दर्द से कराहते हुए रुंधे गले से चीखा-'दीनुक थम छुम सीनस प्यठ कूट्य हा मोरुस ख्वदायो!' याने दीन का स्तंभ मेरे सीने पर है अय ख़ुदा मुझे लम्बे मोटे लठ ने मार डाला। उस अनपढ़, जहिल एवं ग़रीब के करुण क्रंदन में निकले ये शब्द एक कहावत बन गई।

जब कोई व्यक्ति मज़हब की आड़ में अपना उल्लू सीधा कराये या कोई गलत काम मज़हबी काम कह कर सीधे-साधे लोगों को गुमराह करे तो उस समय इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

अनिम स्वय वऽवुॅम स्वय लऽजिम स्वय पानुॅसुॅय : बिच्छू बूटी लाई, इसे रोपा और यह मुझे ही लग गई।

बहुत समय पहले कश्मीर में एक प्रसिद्ध साधु हुआ है। किसी बात पर उसने बहुत ही अनोखे ढंग से अपने आपको दंडित किया। कहा जाता है कि उसने बिच्छू बूटी का एक पौधा समूल उखाड़ कर तथा अपनी एक हथेली पर काफी कीचड़ रख कर इसमें इस बिच्छू बूटी के पौधे को रोप दिया तथा वर्षों तक इस हाथ को एक ही स्थिति में ऊपर की ओर रखा। साधु एक हाथ से इस पौधे की आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई भी करता रहा। कालान्तर में पौधे ने जड़ पकड़ ली और एक अत्यन्त स्वस्थ एवं हराभरा पौधा बन गया। अनेक दर्शनार्थी इन साधु महाराज के दर्शनार्थ आते रहे और काफी चढ़ावा भी चढ़ाते रहे। साधु अपनी आध्यात्मिक शक्ति के कारण जनता में चर्चा के विषय थे ही पर अपने इस अनोखे कृत्य के कारण समूचे कश्मीर मण्डल में विख्यात हो गये। इनका एक शिष्य अपने गुरु की बड़ी हुई ख्याति को ईर्ष्यावश सहन न कर सका और क्रोध में आकर एक दिन गुरु की इस हथेली पर ज़ोरदार वार किया। पौधा तथा मिट्टी नीचे गिर कर बिखर गई। गिरती हुई बिच्छू बूटी का स्पर्श साधु के शरीर के साथ भी हुआ और फफोले पड़ गये। मारे दर्द के साधु के मुख से अनायास ही निकला।

'अऽनिम स्वय वऽवुॅम स्वय लऽजिम स्वय पानुॅसुॅय' याने मैंने बिच्छू बूटी लाई, इसे रोपा और यह मुझे ही लग गई।

जब किसी को पाला-पोसा जाए या उसकी काफी सहायता की जाए और वह बदले में पालने या सहायता देने वाले का नुकसान या अनादर करे, उसके प्रति इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

* * * * * *

हापथ यारुँज़ : भालू की दोस्ती।

एक मनुष्य के साथ, जो किसी जंगल में प्राय: आया-जाया करता था तथा अपने समय का अधिकांश भाग यहीं रहकर गुज़ारता था, एक भालू के साथ दोस्ती हो गई। भालू अपने मानव दोस्त के लिए काफी मात्रा में शहद लाता और बड़े प्यार से इसे चटाता रहा। एक दिन इस आदमी ने भालू द्वारा लाया गया शहद काफी मात्रा में चाटा। इतना कि उसका पेट भर गया और गहरी नींद में सो गया। चूंकि उसके होंठों पर शहद लगा था अत: इसकी गन्ध से मधुमक्खियां आकर्षित हो गईं। एक मधुमक्खी इस आदमी के होंठों पर बैठने लगी। यह देख कर भालू ने सोचा कि यह मक्खी मेरे मित्र को डंक मारेगी अत: वह उठा पास से एक बड़ा पत्थर लाया और मक्खी को निशाना बनाते हुए अपने मित्र के मुंह पर ज़ोर से मारा। मक्खी तो भाग गई पर भालू के दोस्त का प्राणान्त हो गया। तब से 'हापथ यारुँज़' याने भालू की दोस्ती लोक में एक कहावत हो कर रह गई।

जब कोई व्यक्ति किसी की भलाई करने की गरज़ से अपनी मूर्खतावश उसका अहित ही करे. तब इस सन्दर्भ में इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

हरुँम्वो खुक ग्वसोन्य: हरमुख (पर्वत) का जोगी।

एक था जोगी। बेचारा बारह वर्ष तक हरमुख पर्वत पर (जहां शिव-पार्वती का वास माना जाता है) चढ़ने का प्रयास करता रहा। उसके साथ यह अनोखी बात होती रही कि सुबह जिस जगह से वह चढ़ाई शुरू करता और काफी चढ़ाई पार भी करता, पर शाम को वह स्वयं को उसी जगह पर पाता जहां से उसने चढ़ाई शुरू की थी। यह कैसे हो रहा है। उसकी समझ में कुछ भी न आता। बारह वर्ष समाप्त होने के आखिरी दिन जोगी ने एक चरवाहे को हरमुख से उतरते देखा। जोगी इस चरवाहे के पास गया, पूछा-क्या तुम पर्वत के शिखर तक पहुंचे थे? चरवाहे ने हामी भरी। 'वहां तुमने क्या देखा?' जोगी ने दूसरा प्रश्न किया। 'वहां मैंने एक झाड़ू लगाने वाले दम्पति को देखा। वे एक अजीब जीव को, जिसका सिर मानव का और धड़ पशु का था, दुह रहे थे। उन्होंने मुझे यह दूध पीने को दिया पर मैंने यह दूध पीने से इन्कार किया क्योंकि मेरी दृष्टि में यह दूध अपवित्र था। इसके बाद उन्होंने मेरे मुंह पर कुछ टीका फैंक दिया, जो अभी भी मेरे चेहरे पर होगा।' जोगी तुरन्त समझ गया कि झाड़ू लगाने वाले कोई और नहीं शिव-पार्वती रहे होंगे और इसे माया के वश कर इस रूप में दिखे होंगे। जोगी चरवाहे के बिलकुल नज़दीक गया और उसके चेहरे पर के टीके को चाट लिया ऐसा करते ही जोगी ऊपर आकाश की ओर अपने आप उठता गया और बादलों में विलीन हो गया। बेचारा चरवाहा हैरान होकर यह सब देखता रहा। तब से 'हरुँम्वो' खुक ग्वसोन्य 'याने हरमुख का जोगी कहावत अस्तित्व में आई है।

जब किसी को कोई काम बार-बार करने पर भी सफलता न मिले या कोई बात बार-बार समझाने पर भी समझ में न आये, या याद न रहे तब इस सन्दर्भ में इस कहावत का प्रयोग होता है।

द्राग च़ऽल तुॅ दाग़ नुॅः अकाल मिटेगा पर दाग़ नहीं मिटता।

कहा जाता है कि पहले कश्मीर अक्सर अकाल की चपेट में आया ही रहता था। एर ज़बरदस्त अकाल के दौरान एक आदमी को, जो बहुत दिनों का भूखा-प्यासा था तथा इस कारण काफी कमज़ोर हो गया था, एक भूली-बिसरी बहन की याद आ गई। उसने इस गरज़ से कि बहन मुझे कुछ खिला-पिला सकती है उसके घर जाने का निश्चय कर लिया। वह काफी कठिनाई से रास्ता पार करता रहा। जब बहन ने तनिक दूर से ही भाई को आते देखा तो उसे समझने में देर न लगी कि भाई मेरे घर किस कारण आ रहा है। वह उस समय रसोई में रोटियां सेंक रही थी। भाई के घर में घुसते ही बहन ने तवे से सिंक रही रोटी उतार दी और इसे छिपाने के लिए बग़ल में दबाया ताकि भाई को पता न चले कि मैं रोटियां सेंक रही हूं। ऐसा करने से उस बहन का बग़ल जल गया और उसके शरीर पर जले का दाग़ बना रहा।

इसी घटना पर यह कहावत-'द्राग च़ऽल तुॅ दाग़ नुॅ' याने अकाल मिट जायेगा पर दाग़ नहीं-अस्तित्व में आ गई।

जब किसी स्वजन या मित्र आदि से सहायता की आशा हो और वह आशा के अनुरूप सहायता न कर ठेस पहुंचाये तभी इस सन्दर्भ में इस कहावत का प्रयोग होता है।

इस तरह की अनेक कथाएं, घटनाएं लोक में प्रचलित हैं जिन्हें यदि लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जाए तो एक जन्म काफ़ी नहीं, पर लिपिबद्ध करने का प्रयास बड़े पैमाने पर तथा पूरी गम्भीरता के साथ निरन्तर चलता ही रहना चाहिए। ऐसा न किया गया तो हम कालान्तर में इस अमूल्य सम्पदा से हाथ धो बैठेंगे कहावतों के वृहद् कोष बनाने के साथ-साथ कहावतों का गहन-गम्भीर तथा वैज्ञानिक पद्धति पर अध्ययन भी होने चाहिए। ये अध्ययन कई ना मालूम तथ्यों से भी पर्दे उठाकर जानकारियां दे सकते हैं।

सम्पर्क : 84/ सी-3 ओम नगर,
उदयवाला, बोहड़ी, जम्मू-180 002

✦ ✦ ✦

सन्तों की भीड़ में चित्रकूट

❑ डॉ० कृष्ण चन्द्र गुप्त

7 मार्च 97 को चित्रकूट में होने वाले 24 वें रामायण मेले में जाने का अवसर मिल गया। डॉ० लोहिया ने भारतीय जनमानस में राम चेतना का जागरण करने के लिए रामायण मेले की योजना बनाई थी। अन्ध विश्वास रूढ़ि रीतियों और अलौकिक चमत्कारों से रहित राम के व्यक्तित्व में मर्यादारक्षण, लोकधर्मपालन, दुष्टदलन और आदर्श शील की जो अभूतपूर्व प्रतिष्ठा राम काव्य की बड़ी समृद्ध परम्परा से हुई है, उसको जनमानस में प्रतिष्ठित करके समाज में स्वस्थ मूल्यों के संचार करने का राष्ट्रीय स्वप्न इस मेले के मूल में रहा होगा। धर्म को दीर्घकालीन राजनीति और राजनीति को अल्पकालीन धर्म मानने वाले डॉ० लोहिया ने राम में मूर्तिमान धर्म और राजनीति की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु इस मेले की संकल्पना की थी। तो ऐसे युग एवं दृष्टिबोध से प्रेरित-प्रोत्साहित होकर जिस मेले को प्रारम्भ किया गया था उसके विषय में पढ़ने-सुनने पर उसे देखने की इच्छा सहज ही मन में कई वर्षों से कुलबुला रही थी। इसलिए ''रामकथा : जीवन मूल्यों की गाथा'' पर केन्द्रित संगोष्ठी में आलेख पढ़ने बोलने के लिए जब निमन्त्रण मिला, तो बड़ा अच्छा लगा।

चित्रकूट से पहले ही राजमार्ग पर डॉ० लोहिया रामायण मेले का विशाल प्रांगण और उसमें निर्मित विशाल मंडप को देखकर आयोजन की गरिमा का आभास हुआ। रामलीला इस देश में क्या दक्षिणपूर्वी एशिया में अब जनमेले का रूप ले चुकी है और भारत में तो सबसे बड़े सांस्कृतिक धार्मिक समारोह और मेले का रूप इसने ले ही लिया है। विश्व में शायद ही कहीं इतनी गहराई से इतने व्यापक जनसमूह को किसी लौकिक या अलौकिक व्यक्ति या शक्ति ने प्रभावित पुलकित किया हो, जितना रामकथा के इस लौकिक रूप रामलीला और इसके सहयोगी रूपों-रामायण कथा वाचन और नाटक आदि ने किया है। दस हजार श्रोताओं और दर्शकों के बैठने का यह खुला मंडप। सैकड़ों कलाकारों के लिए बना हुआ मंच। साथ में सभागार, अतिथि शालाएं और इन्हें घेरे हुए बड़ा विशाल परिसर। मुख्य प्रवेश द्वार पर राम के लोकरक्षण का प्रतीक विशालकाय धनुष और उसके नीचे राम की चरण पादुकाएं - चित्रकूट लीला का सारतत्त्व बड़े विराट भव्य एवं कलात्मक रूप में दर्शक को देखते ही बाँध लेने वाला।

वहाँ जाकर स्वीकृति भेजने वाले विद्वानों की सूची देखी तो दंग रह गया। साठ सत्तर से कम नहीं थे। पूरे देश से सिद्ध प्रसिद्ध रामायणी, विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालयों से सम्बद्ध विद्वान, प्रसिद्ध राम साहित्य के रचयिता, शोधक एवं व्याख्याता। इलाहाबाद लखनऊ और छतरपुर आकाशवाणी के तथा रास लीला, राम लीला और नौटंकी करने वाले सैकड़ों कलाकार।

सुबह नौ बजे से रामलीला बारह बजे से विद्वत्त गोष्ठी, तीन बजे से रामायणी व्यासों का कथावाचन, छः बजे से आकाशवाणी के कलाकारों द्वारा भक्ति काव्य का कीर्तन गायन वादन और नर्तन, और नौ बजे से रास लीला। पांच दिन के इस भव्य समारोह में ढ़ाई सौ से अधिक कलाकार और विद्वान। वास्तव में लगा– 'चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीड़'।

और दर्शक। हजारों की संख्या में, अकेले दुकेले, बीबी बच्चों को लिए हुए आस-पास के क्षेत्र के। गोदावरी स्नान, स्फाटिक शिला दर्शन, अनुसूया आश्रम, हनुमत् धारा दर्शन एवं स्नान की लालसा संजोये हुए। जो लोग ये मानते हैं कि आज श्रद्धा, आस्था आस्तिकता, अलौकिकता, दैव्य गुणों और चमत्कारों में से जनविश्वास उठता जा रहा है, बौद्धिकता, तार्किकता, नास्तिकता और धार्मिक पाखंड ढौंग अन्धविश्वास की प्रतिक्रिया स्वरूप, यहां आकर उनकी धारणा डगमगाने लगती है। राम से सम्बद्ध स्थलों के प्रति हिन्दू लोक मानस में जो तर्कातीत श्रद्धा और पूजा का भाव है, उसे बिना देखे किसी भी तार्किक को विश्वास नहीं हो सकता। तो यहां भी अपार भीड़। ऐसा नहीं लगता था कि ये तीर्थ यात्री आर्थिक, सामाजिक, या सांस्कृतिक रूप से समृद्ध हैं। बल्कि निम्न मध्य वर्ग क्या निम्न वर्ग के मुश्किल से खाने पीने का जुगाड़ करने वाले ये लोग अधिकतर लगते थे। प्रायः अशिक्षित या नाम मात्र के साक्षर, लेकिन धार्मिक और नैतिक रूप से बड़े समृद्ध। अधिकतर भारतीय जन आर्थिक सामाजिक रूप से प्रायः विपन्न और गरीबी की रेखा से थोड़े ही ऊपर या नीचे हैं लेकिन भावनात्मक एवं परम्परागत नैतिक रूप से श्रद्धा और आस्तिकता में सिर से पैर तक डूबे हुए पौराणिकता अलौकिकता, दिव्यता और चमत्कारों में सहज विश्वासी, तर्क बौद्धिकता से अछूते तो यहां भी अपार भीड़, अधिकतर सन्तमना, सहज विश्वासी। इन्हीं को सन्तन की भीड़ कहना उचित होगा।

तो क्या विद्वान्, धर्मोपदेशक रामायणी, रामलीला, रासलीला नौटंकी और आकाशवाणी के कलाकार सन्त नहीं माने जा सकते। इनमें कुछ तो सन्त होंगे या कुछ में किन्हीं अंशों में 'सन्तई' होगी। इनके बाह्याकार, वेश भूषा, रंग ढंग देखकर इनके प्रति कुतुहल आकर्षण का अनुभव तो हुआ है लेकिन सात्विकता, सहजता, शील स्वभाव की निष्कपटता और पर- दुःख द्रवणशीलता प्रायः दिखाई नहीं पड़ी। हो सकता है अन्तस् में कहीं दबी हो। विद्वानों में वाणी वर्चस्व, बुद्धि वैभव तर्क प्रखरता, शास्त्रार्थ चातुर्य था और खूब था। कलाकारों में कलाकौशल से जनसामान्य को लुभाने, भरमाने की चातुर्य भरपूर थी। रामायणीयों से कंठस्वर, व्याख्या

कौशल. और वाद्य वृन्द माधूर्य भी अद्‌भुत और प्रभावी था। लेकिन ईर्ष्या द्वेष, स्पर्धा, अपना ठाठ जमाने और दूसरे को उखाड़ने को जो कौशल बड़ी चालाकी से छिपाया जाता था वह उन्हें सरल और सन्त-मना मानने में बाधक था।

फिर भी जनसामान्य को आन्दोलित करने रसमग्न करने और वागवैभव से चमत्कृत करने के कौशल के कारण ही अधिकतर कलाकार और रामायणी अपनी धाक जमाने में सफल हुए थे। यह भीड़ जहां आयोजकों की आर्थिक और सामाजिक क्षमता का प्रमाण थी वहां कलाकारों और विद्वानों के लिए प्रर्याप्त समय न मिलने के कारण असन्तोष का कारण बनी हुई थी। लगता था कि धन और सार्मथ्य का अपव्यय हुआ है। वरना तीन घंटे की विद्वत्त गोष्ठी में 15-20 मिनट मुख्य अतिथि और अध्यक्ष के अर्चन-वन्दन और माल्यार्पण में निकल जाते थे संचालक के द्वारा किया गया गुणानुवाद नारद, शारद, शेष, गणेष से होड़ ले रहा था। नेता और अफसरों के हाथ में माइक आ जाने पर अपनी राजनीति बधारने और अफसरी झाड़ने का दुर्लभ अवसर पाकर इतने विशाल जनसमूह के सामने वे अपना इहलोक और परलोक बनाने में चूकते नहीं थे। इसी कारण से देश के चारों कोनों से आये विद्वानों को बोलने के लिए केवल 10-10 मिनट ही निर्धारित किये गये थे। क्योंकि अधिकांश समय नेता और अफसर चाट गये अनावश्यक या नितान्त सामान्य बातों को फेंटते हुए। इसीलिए समय और साधनों का ही अपव्यय लगा। फिर जिन नेता अफसरों की कृपा से इतना विशाल और व्ययसाध्य आयोजन सम्पन्न हो रहा था उनके द्वारा पूर्णाहुति के बिना यह विराट सांस्कृतिक यज्ञ कैसे सम्पन्न होता?

इस पूरे आयोजन का सबसे निरर्थक या अत्यन्त सीमित उपयोगिता वाला कार्यक्रम था विद्वानों का आलेख पाठ या भाषण का सारांश, जो अधिकतर जनसामान्य के सर के ऊपर से गुजर गया। लेकिन राम से सम्बद्ध भाषण या आलेख थे इसलिए बेचारी धर्मपारायण जनता सुनती भुनती रही और कुछ तो वहीं सो भी गई। तभी तो नरेन्द्र कोहली ने कहा था ऐसी गोष्ठी है यह कि वक्ता से मन या पीठ फेरकर श्रोता बैठे हुए हैं और वक्ता भी समझते हैं इनके लिए हमारी कोई उपयोगिता नहीं है। क्योंकि हम जो बड़े तत्व की बात कह रहे हैं वह इनकी समझ में आ ही नहीं सकती। प्राय: धारणा यह है कि विशिष्ठ बात जनग्राह्य हो ही नहीं सकती और जनग्राह्य बात में कोई विशिष्टता होती नहीं है। और विडम्बना यह है कि जिन आचार्यों और कवियों ने राम कथा को इतना लोकग्राह्य रूप दिया, रामायण मेले में आकर भी विद्वानों का यह भ्रम टूटा नहीं। बाल्मीकि या तुलसी से बढ़कर तत्त्वज्ञानी कौन है और संस्कृत या हिन्दी में। और इन दोनों से बढ़कर कोई लोकप्रिय हो, तो बताइये। गूढ़तम तत्त्व को सर्वबौधगम्य भाषाशैली में प्रस्तुत करना सिद्धहस्तों का ही काम है। पोथी पंडित या गाल बजाने वाले यह नहीं कर सकते।

तो लोक मानस और विशिष्ट मानस की इस वास्तविकता से यहां आकर खूब परिचय हुआ।

कलाकारों की वेशभूषा हावभाव तो दर्शनीय थे ही सन्तों महन्तों साधु सन्यासियों की माला छापे, तिलक उत्तरीय एवं अधोवस्त्र और उनके दण्ड कमंडल ध्वजा पताकाएं इनसे भी अधिक चित्र--विचित्र थे। यहां आकर पुरूषोत्तम दास टंडन के इस कटाक्ष की गहराई, व्यापकता और सच्चाई के दर्शन हुए कि धर्म सम्प्रदाय के प्रवर्त्तन में भी फैशन प्रवर्त्तन की तरह सबसे अधिक योगदान दर्जियों और नाईयों का है। इसी को तुलसी ने मानस के उत्तर काण्ड में लिखा था– ''जाके नख और जटा विशाला। सो प्रसिद्ध तापस कलि काला'' पौने पांच सौ वर्ष पहले जिस प्रखर ज्वलन्त सत्य का उदघोष तुलसी ने किया था वह आज भी उतना ही क्या उससे भी अधिक चमचमा रहा है।

इतनी तरह की मालाएं भांति भांति के तिलक, किस्म किस्म के रुद्राक्ष, तरह-तरह के अधोवस्त्र और उत्तरीय, ऐसी चमक-दमक अंगूठियों, घड़ियों और चैनों की, इतने प्रकार के अलंकरण और मेकअप की सामग्री देखते ही बनती थी। लगता था किसी फैशन परेड को देख रहे हैं। अनेक सन्त महन्त और शंकराचार्यों के कथित प्रभा मंडल की अलौकिकता या दिव्यता का अहसास कराने की चेष्टायें और बड़ा भारी ताम झाम। ऐसे वीतरागी निस्पृह, अनन्त श्री विभूषित ऋिद्धि सिद्धियों के स्वामी, और इनके ये रंग ढंग पूरा वातावरण राममय था– 'ब्रह्म ज्ञान विनु नारी नर करहिं न दूसरी बात' जैसा। लेकिन इनमें से अनेक की करनी ? उसके बारे में कुछ न कहना ही ठीक है। क्योंकि यह करनी अपरंमपार है – 'शेष सकहि न सहस मुख गाई।'

इसीलिए मुझे चित्रकूट विषयक अति प्रचलित दोहे की पहली पंक्ति की याद आती रही– चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीड़। इतने सारे सन्त। कबीर ने चेताया था– 'सन्तों के लहँड़े नहीं, हंसों की नहि पाँत। – लालन की नहिं बोरियां, साधु न चले जमात॥ और यहां साधु जमात में ही नहीं पूरी भीड़ भाड़ के साथ पूरे वैभव-विलास, ठाठ-बाट के साथ। एक से बढ़कर एक छत्र चमर दण्ड आयुध आसन-सिंहासन लेकर चलने वाली पूरी जमात क्या भीड़। अपने इस रौबदाब से जनता को अभिभूत करने वाली और उनका मनचाहा न होने पर उनके अहं का विस्फोट, गर्जन-तर्जन, चीत्कार फूत्कार लगता था कि कमण्डल से जल निकालकर अपराधी को भस्म ही कर डालेंगे। इतनी प्रदर्शन प्रियता इतना वैभव-विलास इतना वितण्डावाद और शब्दाडम्बर। कहने का वीतरागी, निस्पृह विरक्त उदासीन और अनाशक्त। इतना वैषम्य! कथनी और करनी में। चित्रकूट की इस पावन धरा पर यह सब स्वांग तमाशे देखकर आश्चर्य से अधिक दुःख हुआ।

चित्रकूट–यहां राम भरत की सात्त्विक्ता, विनयशीलता, सहजता, सरलता, निष्कपटता ने विश्व के साहित्य में ही नहीं अपितु इतिहास में भी एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जो 'न भूतो न भविष्यति' बन गया। चक्रवर्ती साम्राज्य राम और भरत के लिए फुटबाल बना हुआ है, कोई भी उसे लेने को तैयार नहीं है। शील, सदाचार, त्याग, वैराग्य और अनासक्ति का ऐसा संयोग अभूतपूर्व ही था और वहीं आज ऐसा ताम झाम वैभव विलास वाणीचातुर्य देखा तो लगा कि भीड़ तो अपूर्व है कलाकारों और विद्धानों की, लेकिन इसमें सन्त कितने हैं? और उनमें भी कितनी 'सन्तई' है। विडम्बना यह है कि जनसामान्य में प्रदर्शन नहीं है छल कपट भी नहीं है वाणी-चातुर्य भी नहीं है लेकिन इन्हें उपदेश देने के लिए जो भांति भांति के जीव आये हैं, खोट प्रायः कहीं उनमें ही है। जो अधिकांशतः निरर्थक प्रभावहीन प्रवचन-उपदेश करने में ही अपनी साधना की इति श्री समझ बैठे हैं। राम के नाम पर इतने बड़े आयोजन को अभी अपनी सार्थकता तलाश करनी है। मुझे ऐसा ही लगा।

संपर्क : 186/12, आर्यपुरी, मुजफ्फर नगर-125001

कहानी

ढूंढ ला फौजी को

❑ नरेश कुमार 'उदास'

''अब अमरु का खेल खत्म समझो। दोनों ने खूब रंग-रलियां मना लीं। अब तो तारो का पति करतारा फौजी लौट आया है घर। अब यह सब नहीं चल पाएगा।'' सभी गांव वाले करतारा को नाम से नहीं, अपितु ''फौजी'' कहकर पुकारते रहे हैं। गांव की यह दोनों औरतें आपस में करतारा और तारो से जुड़ी बातें कर रही थीं। औरतों के सिर पर खाली घड़े थे। वह पानी लेने जाती आपस में बतियाती तारो और अमरु के बारे में कहने लगीं।

''तारो ने तो हद कर डाली। यह सब उसकी शह पर तो होता रहा होगा? नहीं तो पराये मर्द की क्या मज़ाल, जो पराई स्त्री को छू भर ले।'' पहली औरत ने कहा था।

''लेकिन अमरु ने तो हद कर डाली। जिस थाली में खाता रहा उसमें छेद कर डाला। भोगता रहा पराई औरत को। अकेली औरत होने का भरपूर लाभ उठाया इस अमरु ने।' पीछे-पीछे चल रही दूसरी औरत ने बात आगे बढ़ाते कहा था।'

''तारो भी दूध की धुली नहीं''। उसने यह सब क्यों सहा? फौजी को यह सब पहले ही क्यों नहीं बता डाला? पहली औरत ने मन की भड़ास निकाली थी। दोनों युवतियां बतियाती इस बात से अनभिज्ञ थीं कि पास के खेत में वहीं फौजी कंटीली झाड़ियां काट रहा था। फौजी ने जब दोनों की बात सुनी तो कान खड़े हो गए। वह दम साधे झाड़ियों के पीछे सब सुनता रहा। लेकिन यह सब सुनकर उसे ऐसा लगा कि शरीर को लकवा मार गया हो। रहस्य की परत उसने उतरती देखी। वह अधमरा सा कुछ पल वैसा ही पड़ा रहा। फिर मानो अपनी लाश उठाए घर लौटा। उसकी स्थिति बड़ी नाजुक हो आई थी।

उसकी आँखों में खून उतर आया। वह ऐसा होगा फौजी सोच भी नहीं सकता था। अमरु उसका चचेरा भाई है, किन्तु उसने सदा उसे अपनों से बढ़कर समझा था। उसकी पत्नी तारो उसके पीछे यह गुल खिलाती रही। दोनों इस नर्क में गिरे रहे। उसका पारा सातवें आसमान पर जा पहुंचा। उसका मन हुआ, जाते ही अमरु को गोली से उड़ा दे। पर तारो ने भी कौन

सा पत्नी का धर्म निभाया? उसका भी गला रेत दे बस। भरे मन से वह लौटा था घर। तारो घर पर नहीं थी। अमरु भी न जाने कहां चला गया था। वह बिस्तर पर मरा सा पसरकर रह गया। बहुत समय तक स्वयं से लड़ता रहा। गोधूलि की बेला में गांव भर के पशु लौटने लगे। तारो कुछ देर बाद लौट आई थी। लेकिन फौजी ने उसे मुंह नहीं लगाया। सांझ को अमरु लौटा था।

तीनों चूल्हे के पास बैठे थे। लपलपाती आग चूल्हे में ही नहीं, बल्कि फौजी के दिल में भी धधक रही थी। वह जलती आग में कनखियों से कभी तारो को तो कभी अमरु की मुखाकृतियों के भाव पढ़ने लगा। दोनों ने इस बात को गहरे अनुभव किया था। फौजी कुछ असहज है। जरूरी दाल में कहीं काला है। इसलिए दोनों को सांप छू गया। अनजाने में जलती हुई लकड़ी को सहेजती तारो अपना हाथ जला बैठी।

''ऊ ऽऽ ई'', वह धीमे से चीख उठी। छटपटाती वह उठी और हाथ पर ठण्डा पानी डालने लगी।

''जो ध्यान से काम नहीं करता, वह अपना-आप जला बैठता है अवश्य।'' फौजी ने तर्कसंगत बात कही थी। तारो ने कुछ नहीं कहा। बस काम में लगी रही। दोनों ने फौजी के व्यंगभाव को ताड़ लिया था। तारो और अमरु के चेहरे पर कुछ अजीब भाव तैर आये थे। फौजी ने अनमने भाव से थोड़ा सा खाना खाया, और उठ गया। उसका गुस्सा अवश्य थोड़ा कम हुआ था। लेकिन भीतर जलता ज्वालामुखी ठण्डा नहीं हुआ था। वह जल्दबाजी में कुछ नहीं करेगा।

इस गांव में बीस-पच्चीस घर हैं। यहां तीन जातियों के लोग रह रहे हैं। लेकिन एक-दूसरे का सम्मान और भाईचारा बना हुआ है अभी तक। सब आपस में मिल बैठते हैं। इसी वातावरण में अमरु ने यह पाप कर्म किया। उसे सहसा स्मरण हो आया था। जब अमरु की मां ने दम तोड़ते हुए, अमरु को उसके हवाले करते कहा था, ''बेटा इसे अपना ही छोटा भाई समझना।'' तब से वह फौजी के पास है। फौजी ने सदा उसे अपना समझा। इसलिए घर-बाहर का सारा काम उसे सौंप डाला। उसने अमरु को घोड़ा भी ले दिया था। खेतों की बिजाई के पश्चात् जब वह खाली हो जाता तो गांव वालों का सामान घोड़े पर ढोकर वह रुपये कमाता। फौजी ने कभी उससे हिसाब नहीं पूछा था। नौकरी पर जाते हुए तारो को समझाते उसने कहा था। ''देख, तारो यह अमरु अपना ही है। तेरा ख्याल रखेगा। काम में हाथ बंटाएगा। खेत-पशु सब भली-भांति सम्भाल रखेगा।'' कहां अपने टूटे-फूटे घर में जाएगा। दो रोटी दे देना, जहां घोड़ा बांधना है, वहीं सो जाएगा।

''जैसा तुम उचित समझो? इसका है भी कौन हमारे सिवा इस दुनिया में?'' तारों ने आह भरी थी। जाते हुए फौजी के जब अमरु पांव छूने लगा तो भरे गले से फौजी ने कहा था। ''देख अमरु, तेरे सहारे है तेरी भाभी। मिल-जुलकर रहना। हमारा सब तेरा ही है। तुम्हें सब कुछ देखना है मेरे पीछे।''

''आप चिंता मत करें। भाभी को शिकायत का मौका न दूँगा। आप निश्चिंत होकर जाएं।'' अमरु का दिया दिलासा मात्र झूठ का पुलिंदा साबित हुआ था। अब वह जान पाया कि सच्चाई क्या है। उसने अपने ही हाथों लुटा दिया अपना संसार। उसने क्यों विश्वास किया इस अमरु पर। वह जब जब छुट्टी लेकर गांव आता तो अमरु के लिए अवश्य कुछ न कुछ लाता। उसे अमरु पर पूरा विश्वास था। जिसे उसने तोड़ डाला। जबकि वह तो यहां तक सोचने लगा था कि उसकी किस्मत में बच्चे की किलकारी का सुख नहीं लिखा। सो शीघ्र ही अमरु की शादी करा देगा। उसके जब बच्चे होंगे। उन्हीं को देखकर यह अपना यह अभाव भूल जाएगा। किन्तु यह घृणित कार्य जो उसने किया था। उसे लगा अमरु ने उसकी पीठ में छुरा घोंप दिया हो।

वह खून के आंसु रोया था मन में। अब वह क्या करे। प्रतिशोध ले। गांव वाले क्या सोच रहे होंगे। उसकी खिल्ली उड़ा रहे होंगे। किसी ने अगर इस बाबत कुछ उससे कह डाला तो वह सह नहीं पाएगा? कहीं खून न हो जाए मेरे हाथों। वह कहीं का न रहा। उसकी सारी इज्जत मिट्टी में मिल गई। क्या वह दोषी स्वयं है। उसे लगा, उसने क्योंकर विश्वास किया था अमरु पर। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। रात्री धीरे-धीरे कालिमा में बदल रही थी। सर्वत्र अन्धेरा छाने लगा। उसके मन के भीतर भी निपट अन्धकार फैलने लगा।

फौजी को सेवानिवृत्त होकर आए, अभी महीना भर भी नहीं हुआ था। घर लौटने पर उसने दढ़निश्चय कर लिया कि वह अब खेत सम्भालेगा। कब तक पत्नी देखती फिरेगी यह सब कुछ। फौजी ने इस बात को गहरे तक आत्मसात् किया। अमरु अब ज्यादा घर पर नहीं टिकता। जब देखो जुटा रहेगा, किसी न किसी काम में। कभी जंगल चला जाता लकड़ियां लेने। तो कभी बाजार से कस्बे के दुकानदार का सामान (राशन) ढोता। जब कोई काम नहीं होता तो खाना खाकर, घोड़ा जहां बांधता, वहीं बिछी खाट पर पसर जाता। अब जाकर यह भेद खुला। फौजी ने महसूस किया, कि तारो के भीतर पापबोध का भय उसे कमजोर कर रहा है प्रतिदिन। वह जानता है, जरा सा वह उसे धमकायेगा, तो तारो सारा सच उगल देगी। अमरु भीतर से तो डरा-डरा है। किन्तु मुखाकृति पर वैसे भाव प्रकट नहीं होने देता। पूरा बहरूपिया है, शातिर -चालबाज। उसने सोचा वह ऐसा करे कि सांप भी मर जाए, लाठी भी न टूटे। वह अवसर की ताक में था।

एक रात सोये-सोये तारो चिल्ला पड़ी। नींद फौजी की आंखों से कोसों दूर थी। तारो को बड़बड़ाकर चिल्लाते देख वह पूछ बैठा।

''क्या हुआ तुम्हें, क्यों चिल्ला पड़ी।''

''कुछ ऽऽऽ नहीं, एक सपना।'' वह वाक्या अधूरा छोड़कर अपना पसीना पोंछने लगी।

''कैसा ऽऽ सपना।'' उसने कुरेदा था।

''मुझे लगा, मानो मेरा कोई गला दबा रहा हो।'' वह बात करते-करते कांपी थी।

''अच्छा सोने की कोशिश करो।'' कहकर उसने करवट बदल ली। लेटे लेटे वह सोचने लगा, कि उसे सचमुच में तारो का गला दबा देना चाहिए। यही सारी लड़ाई की जड़ है। इसी के कारणवश मेरी यह हालत हुई। विचारों के अन्धड़ में वह तिनके समान बहता न जाने कहां-कहां की सोचता रहा। यूं ही न जाने कब उसकी आंख लग गई।

प्रात: पौ फटते ही उसने बैलों को हांका। हल उठाई और खेतों को चल पड़ा। गांव के अन्य हलवाहे भी चांदनी रात में मुंह-अन्धेरे हल जोतने निकल पड़ते। बैलों के गले की घण्टियां बजने लगीं। मनचले हलवाहे कभी-कभार गा उठते। लेकिन फौजी तो मशीन सा जुट गया काम में। दोपहर सिर पर चढ़ आई। फौजी ताबड़-तोड़ अपने बैलों को पीटता भगा रहा था। उसके समीप वाले खेत में हल को रोकता बिहारी लाल बोला ''फौजी आ जा चाय पी ले। तेरे बैल भी दम ले लेंगे।'' किन्तु फौजी ने हुंकारा भरा। ''अभी नहीं भाई।'' तुम पीओ।''

तभी दूर से आती उसे तारो दिखाई दी। पास आने पर बैलों को रोकता वह आम के पेड़ के नीचे चला आया। तारो वहीं रोटी लिए बैठी थी।

''अमरु कहां है।'' उसने भटके से पूछा था।

''लकड़ियां लेने जंगल गया।'' तारो खाना देती बोली थी- अवाज़ मरी हुई।

''तू भी चली जाती। बरसात उतरने वाली है। खूब लकड़ियां इकट्ठी कर ले पहले। कल से तू इधर मत आया कर खेत में। मैं घर आकर खुद खाना खा लूंगा।'' सपाट स्वर उभरा था फौजी का। खाना खाने के बाद फौजी ने कहा ''जा, चली जा, वह भूखा-प्यासा लौटेगा घर।''

मैं खेत का सारा काम निपटा कर लौटूंगा घर। कहते-कहते उसने हुंकारा भरा था। रस्सी पकड़ने की देर थी, बैल पुन: भागने लगे। फौजी को बैलों के पीछे भागता देख, तारो कुछ देखती रही। फिर बर्तन समेटकर लौट आई। उसका मन बैचेन था।

अब क्या होगा? पाप का घड़ा फूटेगा अवश्य? वह क्यों गिरी इस अन्धकूप में। उसने क्यों स्वयं को अमरु के हवाले कर डाला। क्या उसकी मात्र हवस थी वह। तभी वह भयानक रात उसे स्मरण हो आई। पहला पहर रहा होगा? रात का सन्नाटा पसरा पड़ा था। उसने देखा, पास की चारपाई से अमरु उठा था। वह मटके से पानी उड़ेल रहा था। तारो को अपना कण्ठ सूखता लगा था। वह तन्द्रा की स्थिति में थी।

''अमरु मुझे भी पानी पिला ऽऽ देना। उसने आंखो को झपकाया था। गटागट वह दो गिलास पानी पी गई। किन्तु उसका गला बराबर सूखता चला गया। वह सोने का उपक्रम करने लगी। अनिद्रा में वह जब-जब करवट बदलती चारपाई चरमरा पड़ती। सांझ की रिमझिम ने मूसलाधार बर्षा का रूप ले लिया था। खाट बिछाते हुए तारो ने स्वयं अमरु से कहा था। ''तू आज इधर ही सो जा। वहां पानी भीतर गिरेगा। सुबह उस कमरे की छत ठीक अवश्य कर लेना। कहां भीगता रहेगा पूरी रात।'' सोचते-सोचते उसने पुनः करवट बदली। नींद आंखों से कोसों दूर थी। मन अजीब सा हो उठा। शरीर टूट सा रहा था। उसने चाहा, वह उठकर एक गिलास पानी ले आए। वह उठने को ही थी, कि लेटे-लेटे अमरु ने पूछ लिया ''क्या बात है भाभी नींद नहीं आ रही?'' लग रहा था अमरु भी जगा था।

''अमरु न जाने क्यों, नींद उचट सी गई। शरीर टूट रहा है। ठंड भी लग रही है। गला सूखा जा रहा है।'' वह अलसाई सी बोली थी।

अमरु ने दीपक जला दिया। उसने तारो को भरपूर नजरों से देखा था। बिखरे केश, अस्त-व्यस्त वस्त्र, लाल-लाल आंखें। वह देखता रह गया बस। ''फौजी की याद सता रही होगी? वह होता तो शरीर टूटता नहीं।'' अमरु ने ठिठोली कर डाली। यूं भी देवर-भाभी में कभी-कभार मजाक होता रहता।

''चल ऽऽ हट, मजाक मत कर।'' कहकर वह हौले से मुस्कुराई थी।

''दबा देता हूं बदन। आराम मिलेगा। अमरु दन से अपनी खाट से कूदा था। वह तारो का बदन दबाने लगा। इस बीच उसने तारो का सिर अपनी गोद में रख लिया। फिर माथा मलने लगा। धीरे-धीरे वह दबाता रहा कुछ पल। तारो को लगा, वह हल्कापन महसूस कर रही थी। भीतर कुछ रिसने सा लगा, उसने आंखें मूंद लीं।

''ब ऽऽ स, रहने दे अमरु।'' उसने आंखें मूंदे-मूंदे कहा था। जबकि उसका मन चाह रहा था। अमरु यूं ही दबाता रहे। देखते-देखते अमरु उत्तेजना से भरा, उसके अंगों से खेलने लगा। तारो ने फुसफुसाहट भरे शब्दों में कहा भी अमरु यह क्या? यह मत कर? हल्का सा विरोध, ''अ ऽऽऽ म ऽऽ रु...... शेष शब्द उस बहाब में बह गए। हल्का विरोध धराशायी

होकर बिखर-टूट गया। वह गहरी धुन्ध में डूबी। सपनों में खो सी गई थी। मानो कल्पनाओं के पंखों के सहारे उड़ी चली जा रही हो। जब सपना टूटा, तो सब कुछ लुट चुका था। उसने अमरु को रोते-रोते इतना कहा ''अमरु तूने मुझे लूट लिया। वह फफकती रही थी। जबकि अमरु की स्थिति में कोई फर्क नहीं आया। वह गहरी नींद में अपनी खाट पर पसर गया था। तब से अमरु उसे बराबर भोगता रहा। वह उसकी बाहों में लुटती रही। यह देह व्यापार का खेल बराबर चलता रहा। टूटता तब जब फौजी घर छुट्टी आता। तारो की हिम्मत नहीं पड़ी। वह फौजी को यह सब बतलाती। किन्तु अब वह पाप बोध से मरी जा रही है। वह फौजी के पांव पकड़ लेगी। माफी मांगेगी। जो सजा देना चाहे, सहेगी। क्योंकि उसने पाप किया है। उससे पति की आग उगलती आंखें देखी नहीं जाती।''

फसलें कट चुकी थीं। अनाज खलिहानों में गट्ठरों के ढेर में बिखरा पड़ा था। किसान चाहते थे कि शीघ्र साफ करके दाने सहेज लें। फौजी ने अपनी खाट उठाई और खलिहान में जाने लगा। मैं खलिहान में सो रहूंगा। क्योंकि रात में आवारा पशु खलिहान में चले आते हैं। कहकर उसने बिस्तर भी ले लिया। तभी अमरु चला आया। बोला ''मैं पड़ा रहूंगा वहां। तब फौजी माना। उसने खाट वहीं बिछा दी। अमरु ने अपनी खाट उठाई और खलिहान में चला गया।''

फौजी और तारो के बीच बातों का सिलसिला लगभग टूटा पड़ा है। दोनों अपने -अपने ख्यालों में खोये रहते। भावों का पनपता उद्वेग कब फूटेगा। फौजी जानबूझ कर आंखे बंद किए पड़ा रहा। तारो समीप की चारपाई पर लेटी सोच रही थी। वह क्यों गिर गई पाप की गहरी खाई में। सपने उसे डराते रहते हैं। जब आंख लगने लगती। तभी उसे लगता फौजी उसकी छाती पर बैठा उसके नाक-कान-गला काट रहा होता है। अंगारे भरे नयनों से तकता वह फुंफकारता है। ''यही तेरी सजा है। इसी रूप का तुझे गुमान था। ले, अब देख पापिन अपना रूप। उसे लगता फौजी चाकू से दनादन उस पर बार करता यही शब्द दोहराता है। वह चौंक कर उठ जाती। सहमी-सहमी सी पड़ी रहती। रोती चुपचाप। उसने एकान्त के क्षणों में यह सोचा, क्या वह बच्चे के लालच में अमरु से जुड़ी थी। डाक्टरों ने तो फौजी में कोई नुक्स नहीं बताया था। तो क्या दोष उस में था। वास्तव में बच्चा जनने का मोह था या फिर उसके मन में पनपी वासना की आग। तारो को चक्कर आने लगता। उसे अनुभव होता पृथ्वी उसके पांवो के नीचे डोल रही है।

उधर अमरु की स्थिति भी असमंजस परिपूर्ण रही। वह यह तो जान चुका था कि फौजी को कहीं से भनक मिली होगी। तारो स्वयं यह राज उगलेगी नहीं? लेकिन गाज अवश्य गिरेगी। उस स्थिति के लिए अमरु स्वयं को तैयार करने लगा। वह अधिकतर बाहर के कार्यों में व्यस्त रहता। कभी-कभार यार दोस्तों के घर भी रात बिताने लगा था।'' वह बराबर प्रयत्नशील

रहने लगा, कि इस संकट से कैसे बचे। क्या वह फौजी का घर छोड़ दे। अपना टूटा-पुराना घर मरम्मत करे, ताकी वह अलग रह सके। फौजी के घर में रहते हुए, उसने थोड़े रुपये बैंक में जमा करा रखे थे। वही इस संकट में काम आएंगे। किन्तु वह समय की धार को देख रहा था। वह स्वयं फौजी से कोई भी बात नहीं करना चाहता था। देखें फौजी उसे क्या कहता है, क्या पूछता है? उसी के अनुसार चक्रव्यूह रचना होगा, अमरु ने ऐसा सोच लिया था मन में। लेकिन भीतर का डर उसे खाए जा रहा था।

जब-जब फौजी अपनी राईफल साफ करता तो तारो और अमरु की रुहें फनां हो जातीं। वह दोनों यही सोचते, आज की रात उनकी अन्तिम रात होगी? वह एक-दूसरे की आंखों में उग आए भय को देखते। आज सुबह ही फौजी अपनी बन्दूक निकाल लाया। धूप में बैठा वह उसे बड़ी तल्लीनता से साफ करता रहा। जब भी वह कुछ मांगता तारो भागी चली आती। फिर फौजी जंगल अपनी राईफल लेकर चला गया।

उचित समय पाकर तारो लगभग रोती-फफकती बोली मेरा क्या होगा अब? तुमने मुझे किस नर्क में धकेल डाला। मैं कहीं की न रही? वह न जाने क्या कर बैठे? अमरु किस जन्म का तुमने मुझ से बदला लिया।'' वह रोती रही बहुत देर तक। फिर बोली ''अब बोलते क्यों नहीं? पत्थर बने खड़े हो। किस कुएं में डूब मरुँ? वह फिर फफकने लगी।

''रोना बंद कर, दोष मुझ पर मत लगाओ। तुम्हारी मर्जी के बिना ...ऽऽ...।'' कहते हुए अमरु ने वाक्य अधूरा छोड़कर तारो को देखने लगा।

''मेरे लिए एकमात्र रास्ता बचा है। फौजी को सब सच बता दूं। मैं पाप की गठरी नहीं उठा पा रही। मैंने निश्चय कर लिया है यह। सब उगल दूंगी उसके सामने।''

''फिर क्या होगा जानती हो। दो लाशें मिलेंगी। इस गांव वालों को एक तेरी एक मेरी। यह सोच लेना। मैं तुझे कहता हूं। समझ से काम ले मुंह बंद रख। या मुझ संग भाग चल। कहीं दोनों रह लेंगे। माल इकट्ठा कर और चल पड़। क्या कहती हो।'' अमरु ने अपना अन्तिम दांव फैंकते हुए कहा था। लेकिन तारो तो अपने होश-हवाश खो बैठी थी। वह खा जाने वाली निगाहों से अमरु को देखने लगी। मानो अमरु को कच्चा चबा जाएगी। अमरु चुपचाप वहां से खिसक गया। तारो विचार मग्न रही, किन्तु उसने निर्णय कर लिया था। वह सच बोलेगी। पाप को छुपाएगी नहीं अब। उसे स्वयं से घृणा हो आई। लेकिन अमरु बेचैन मन घूमता रहता इधर-उधर। वह अपने बचाव के सारे उपाय खोजने लगा। फौजी से वह कैसे निपटेगा। क्या स्थिति की नाजुकता को देखते वह स्वयं फौजी के पांव पकड़ ले। गिड़गिड़ाए। बस नाटक भर तो करना होगा? या फिर वह सारा इल्जाम तारो पर मढ़ देगा? वह अब चौंकन्ना रहने लगा। पल-पल की खबर लेता रहता। हवाओं को सूंघता रहा।

''भाभी तू अपना निर्णय बदल ले।'' एक दिन मौका पाकर वह दनदनाता तारो के सिर पर खड़ा हो गया था। तारो कमरे में कपड़े सहेज रही थी। फौजी उस पल उसे सड़क की ओर जाता दिखा। सो उसने अनुमान लगा लिया कि फौजी पैंशन लेने गया होगा।

मैं तुम्हारी चाकरी करूंगा? जैसा तुम कहोगी वैसा मानूंगा। जीवन भर तुम्हारा गुलाम बन जाऊंगा? लेकिन तुम अपना मुंह बंद रखो बस यही चाहता हूं। करती हो वायदा, बोलो मानती हो मेरी बात। वह नाटकीय मुद्रा में चिरोरी करने पर उतर आया था।

तारो चुपचाप रोती रही। फफकती रही।

भाभी इसे क्या समझूं ? क्या समझूं बहते आसुंओं का मतलब?'' वह उसे झिझोड़ने लगा था।

उन दोनों में से कोई यह नहीं जानता था, कि फौजी वापिस लौट आया था। वह अन्दर आना ही चाहता था कि उसने अमरु की बातें सुनी तो वह बाहर दीवार से चिपका सुनता रहा सब। बस जो शहर जाती है, आज आई ही नहीं थी। इसलिए वह वापिस लौटा था। आज अमरु के मुंह से सब कुछ सुन लिया। स्थितियां स्पष्ट होती चली गईं। वह दम साधे खड़ा रहा। लगा सारा रक्त किसी ने निचोड़ लिया है उसके बदन से। भीतर तारो की सिसकियां बढ़ने लगी थीं। तभी अमरु पैर पटकता दनदनाता बाहर निकला था। उसने फौजी को नहीं देखा था। फौजी एक ओर हट गया था अमरु को बाहर निकलते देख।

वह .भीतर गया। तारो फूट-फूट कर रोते निढाल हुई जा रही थी। कुछ पल असमंजस की स्थिति में वह पड़ा रहा। फिर चारपाई पर जा बैठा। चारपाई के सिरहाने दीवार के साथ उसकी बन्दूक लटक रही थी। फौजी के मस्तिष्क में बवण्डर उठने लगे।

लेकिन वह कुछ करता, इससे पहले तारो कटे वृक्ष समान उसके कदमों में गिर पड़ी। ''मैं पापिन हूं, कुलटा हूं। मैंने अपना धर्म नहीं निभाया। मुझे मार डालो। मेरी बोटी-बोटी काट डालो। ''कहकर वह पागलों समान हरकतें करने लगी। फौजी की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई थी। क्रोध एवं क्षमा के भावों के बीच में झूलता रहा फौजी। फिर उसे इन दोनों से घृणा हो उठी। उस का दम इस वातावरण में घुटने लगा था। उसने निर्णय कर लिया, वह यहां एक पल नहीं ठहरेगा? अब उसका यहां कोई अपना नहीं। इन दोनों ने धोखा दिया है उसे। रात्री के अन्धकार में वह न जाने कहां चला गया।

प्रातः सारे गांव में यह खबर फैल गई। फौजी न जाने कहां चला गया। लौटा नहीं रात का। वह बन्दूक लेकर गया था। लोगों ने जंगल छान मारा। वह कहीं नहीं मिला। फौजी को आसमान ले उड़ा या फिर उसे पृथ्वी निगल गई। वह पुनः लौटा नहीं। फिर गांव में किसी

ने अफवाह फैला दी। जंगल में मृत मानव देह मिली है। चिथड़े-चिथड़े। कोई कहता नंगी लाश थी। कोई कहता फिरता फौजी के पहने कपड़े झाड़ियों में फंसे मिले थे। जितने मुंह उतनी बातें। तारो ने अमरु के पांव पकड़े। कहा जा चला जा ढूंढ ला फौजी को। जहां पता लगता कि फौजी के होने की सम्भावना है। वह उसे रुपये थमाते कहती ''अमरु ढूंढ लाना, ऐसे मत आना। ले आ मेरे फौजी को कहीं से भी।'' अमरु रुपये लेने आता। फिर हफ्तों गायब रहता। वह शराब भी पीने लगा था अब। धीरे-धीरे उसने तारो की दौलत ही नहीं जायदाद पर भी कब्जा जमा लिया था। आजकल तारो पागलों समान घूमती है। वह बिल्कुल पगला गई। फटे-चीथड़ों में गांव के पीपल के नीचे पड़ी रहती है। रात को फौजी-फौजी चिल्लाती है। अब तो गांव के बच्चे उसे चिढ़ाने लगे हैं। वह जिसे देखती है, कहती है, तुमने मेरे फौजी को छुपाया है। मेरा सब कुछ ले लो। मुझे मेरा फौजी लौटा दो। वह हंसती है, भयानक हंसी। गांव के कुछ बड़े बूढ़े लोग अभी भी तारो से हमदर्दी रखते हैं। वह पगली तारो को रोटी दे जाते। कभी वह खाती है कभी नहीं भी। उसे बस फौजी का इन्तज़ार है।

सम्पर्क : हिमालय जैवसम्पदा प्रौद्योगिकी संस्थान,

पालमपुर - 176061 (हि० प्र०)

भाषांतर
पंजाबी कहानी

कुसंगी

❑ डॉ० अरविन्द्र सिंह 'अमन'

वाहेगुरु... वाहेगुरु....... वाहेगुरु....... अरे कौन है ? छोड़ मुझे...... दूर हट...... वाहेगुरु....... वाहेगुरु......... वाहेगुरु....... तुझे मैंने कह दिया, मैं यहां से नहीं हिलूंगा, तुम जितना चाहे ज़ोर लगा लो!

परन्तु यह तो निर्ल्लजता की सभी सीमाएं लांघ कर मेरे पीछे पड़ा है। जब पैदा हुआ था, यह मुसीबत गले पड़ी थी और मरते दम तक यह मुझे छोड़ने वाली नहीं है। मेरा तो जीना हराम कर रखा है। जितने भी संसार के कुकर्म हैं मुझ से करवाता है। परन्तु स्वयं मक्खन में से बाल-सा बच निकलता है। मेरे साथ तो वही बात हुई न- 'अजी करे कोई और भरे कोई!' यदि मैं किसी अच्छे कार्य में लगता हूँ तो झट से आ टांग अड़ाता है। अभी ही देख लीजिए- इसे काबू करने का असफल प्रयास कर रहा था। सोचा दो घड़ी 'रब्ब' को याद कर लें। बस लगा मुझे घसीटने!

मिन्नी मेरी पुरानी सहपाठिन थी। बला की खूबसूरत! हम पिकनिक पर गए। - ''दीपे! तुझे कसम लगे यदि तूने यह फोटो किसी को दिखाया। स्वयं देख लेना। यदि 'राम तेरी गंगा मैली' वाले सीन हुए तो किसी को हवा भी मत लगने देना। मेरी इज़्ज़त का प्रश्न है।'' - मिन्नी की आवाज़ में एक याचना थी। उसका गोरा बदन और उस पर पानी में भीगा हुआ। सचमुच, जैसे पानी में आग लग गई हो और मैं ठंडे पानी में जल रहा होऊँ.......!

हैं....... ? देख ले कैसे मुस्कुरा रहा है मुझे उल्टी तरफ लगा कर! मजाल है मुझे छोड़ कर जाए! उस दिन मैटाडोर में एक सुन्दर युवती को इसने सीट दे दी ताकि मेरे साथ बैठ जाए। फिर इसने मेरी बांह उठा कर उसकी बांह पर रख दी।

'चटाक!'...... थप्पड़ की आवाज़ है!........ वो तो पड़ना ही था। युवती ने सोचा होगा युवक बदमाश है। मैं रो पड़ा था। लोग हंसे थे। नहीं, वो हंसा था और मुझे गुस्सा आया

था। पहले उस पर, फिर अपने आप पर।

मैंने हाथ लगाया- पसीना! कुछ युवती के स्पर्श से और कुछ थप्पड़ की करामात थी। शरीर कांप रहा था। मैं तो परीक्षा देने जा रहा हूँ........ सभी प्रश्न याद हैं। पता नहीं, भूल जाऊंगा, नहीं रट्टा तो मारा हुआ है। परन्तु यह कम्बख्त याद रहने दे, तब न!

'हे ईश्वर! तूने यह कैसा कलंक मेरे माथे लगा रखा है। कमाल है, मेरी बिल्ली, मुझे ही म्याऊं। नहीं, मैं इससे टक्कर लूंगा। मैं इसे काबू करके ही छोड़ूंगा। परन्तु....... परन्तु क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ ? हां, यदि यह बैरी मेरा साथ दे तब। लगता है मैं पागल हो गया हूँ। हाय! मैं क्या करूं, क्या ना करूं? वैसे मैं कर भी क्या सकता हूँ? कुछ भी तो नहीं। मैंने आज तक किया भी क्या है? बस, इसी के इशारों पर नाचता आया हूँ। जैसे मैं मनुष्य नहीं, पुतला हूं! और यह, इसने तो जैसे मुझे बुरा बनाने की कसम ही खा रखी है। कुकर्मों का ठेकेदार हो जैसे! पता नहीं इसे क्या मज़ा आता है..........?

यार! तू यह ठीक नहीं कर रहा, गल्त है, पाप है, विश्वासघात है। उस दिन मैं इसी द्वंद में घिरा ऑटो में जा रहा था। तेज़ ठंडी हवा मुझे झिंझोड़ती जा रही थी।

'अरे...... अरे! रोक, रोक! बस यहीं रुक जा।'- ऑटो का द्वार खुला......... मिन्नी हंसी...... वह एक अच्छे शरीफ एवं ऊंचे विचारों वाले साथी के साथ बैठी थी। मैं हंसा...... मैं उसे जो नज़र आ रहा था, वो नहीं था। .... और वह, वह हंसा, पहले मुझ पर, फिर उस पर और फिर अपनी सफलता पर!

ऑटो रुका! हम एक अनजाने स्थान पर। मिन्नी मेरी बांहों में। शायद एक-दूसरे से छुपना चाहते हों जैसे। चुंबन........ और फिर पता नहीं क्या क्या ? .....और उधर मेरी और उसकी लड़ाई चालू। मैं उसे विश्वासघाती कहूं और वह हंसे जाए। भीतर से मैं भी खुश था, परन्तु कसूरवार उसे ही ठहराता था। मिन्नी अब खुश थी। मुझे खुश करके या फिर वह भी मेरी तरह खुश होना चाहती थी। ''तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए।'' मैं चौंक पड़ा।

''कुत्ते! तेरे कहने पर ही तो मैं यह सब कुछ करता आया हूँ। अब जब तुम्हारी भड़काई हुई आग ठंडी हो गई तो सच्चे हो रहे हो!''

मैं रुआंसा-सा हो गया था। वह शांत था। मैंने उसे कभी गुस्से में नहीं देखा और न ही कभी वह अपने किए पर पछताया था।

''देखो! मैं आज तक तुम्हारी हर बात मानता आया हूँ। तूने मुझसे वो करवाया, जो मैं करना नहीं चाहता था। मेरी सारी की हुई कमाई को तू कुएं में डालता रहा है। तू इतना

स्वार्थी क्यों है ? जिस थाली में खाना, उसी में थूकना कहां का न्याय है?'' मैं उसके सामने तड़पा था, ''ईश्वर तुझे कभी क्षमा नहीं करेगा''- मैंने जलकर ऐसा ही कहा था।

''हा-हा-हा.......!'' उसने ठहाका लगाया। 'ईश्वर! अरे ईश्वर से आप डरते हैं मैं नहीं। ईश्वर, वह तुम्हारा है, मेरा नहीं। मेरा तो वह किरायेदार है।' वह पता नहीं क्या-क्या कहे जा रहा था ईश्वर के बारे में........... परन्तु मुझे विश्वामित्र याद आ गए। उनके जैसे भक्त, तपस्वी को इसने अपने वश में कर लिया था। यदि विश्वामित्र इस पर लगाम न डाल सके तो मैं किस खेत की मूली हूँ ? मैं बेबस, थका-थका अनुभव कर रहा था। मुझे किसी विद्वान की कही बात याद आ गई- 'हर एक हृदय में ईश्वर बसता है।' मुझे सचमुच हंसी आ गई थी। 'ईश्वर कभी चोरी नहीं करवाता। वह कभी कामोत्तेजिना नहीं करता। ईश्वर कभी बुरा नहीं हो सकता' क्या यह सब झूठ नहीं ? यह सब झूठ है। सब झूठ है........!

मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई मेरे शरीर को पकड़ कर झिंझोड़ रहा हो और मैं चिल्लाए जा रहा हूँ- यह सब झूठ है...... यह सब झूठ है..........!

अनुवाद : डॉ० बलजीत सिंह रैणा।

संपर्क : पो. बाक्स नं. 121, जम्मू-180 001

व्यंग

संतन को सीकरी सौं काम

❑ डॉ० भागीरथ भार्गव

एक थे संत। नाम था कुंभनदास। छोटी सी कुटिया में रहते थे। ईश्वर की भक्ति करते और बृज भाषा में भक्ति के पद रचते-गाते। रूखा-सूखा खाके मस्त रहते। चुपड़ी की कोई तमन्ना नहीं थी। उनके अनेक भक्त थे। वे, 'हम भगतन के भगत हमारे' की नीति में विश्वास करते थे। भक्तों के लिए वे सम्बल थे, श्रद्धेय थे, मार्ग दर्शक थे। उनकी लोकप्रियता का आलम यह था कि दर्शनाभिलाषियों की कमी नहीं थी। न उनके पास जादुई भभूत थी, न मृत्युंजय गंडा। न वे कोई पारस रखते थे कि लोहे के टुकड़ों को छूकर सोना बना दें, न वे सट्टे के नम्बर बताते थे। बस चल रहा था शांति का जीवन किंतु उनकी लोकप्रियता बढ़ती जाती थी। भारत का बादशाह था अकबर और फतहपुर सीकरी थी राजधानी। इन्द्र का सिंहासन भी जन नेताओं की तपस्याओं से हिलता रहा था सो अकबर, संत की लोकप्रियता से आशंकित हो गया। उसने सोचा उसे सीकरी में बुलाकर सुख-सुविधाओं के पिंजरे में रखना चाहिए। वे यहाँ तशरीफ लायें - महलों की सुविधा पायें, चुपड़ी खायें और पद-वद रचा करें और जो चाहें और पायें मनसबदारी भी। सो बादशाह का प्यादा रवाना हो गया। संत को बादशाह का फरमान दिया। संत ने निश्कलुषमन से प्यादे को बैरंग लौटाते कहा - ''संतन को कहा सीकरी सौं काम।''

एक जमाना था महाराज कृष्ण का। संसार से न्यारी, निराली नगरी मथुरा थी राजधानी। कृष्ण के बचपन के एक मित्र हुआ करते थे, सहपाठी थे, बचपन की गोपनीय बातों के साथी। नाम था सुदामा जाति से ब्राह्मण थे। उस जमाने के सारे ब्राह्मण गरीब हुआ करते थे। ब्राह्मणों की ब्राह्मणियाँ प्रायः चतुर होती थीं। सुदामा की एक मात्र पत्नी ने कहा-जाओ, बचपन की दोस्ती का हवाला देकर महाराज कृष्ण से कुछ माँग लाओ। सौगात के रूप में कुछ ग्राम चावल एक पोटली में बाँध दिए, इतने कि आसानी से काँख में दबाये जा सकें। सुदामा धूलभरी सड़कों पर नंगेपाँव चलते-चलते राजपथ पर आये, जैसे तैसे महलों तक पहुँचे। उनकी रूप सज्जा का कवि नरोत्तम दास ने अपनी अमर रचना 'सुदामा चरित' में अद्भुत चित्रण किया है। इसी

प्रसंग को परसाई जी ने उस काल के भ्रष्टाचार से जोड़ा है। बहरहाल सुदामा द्वारपाल से आजिजी कर महाराज कृष्ण को अपने आगमन की सूचना भिजवाते हैं। कृष्ण अपनी रानियों-पटरानियों से चुहलबाजी कर रहे थे। अनेक सुन्दर दासियाँ पंखा झल रही थीं, शीतल पेय पिला रही थीं। किंतु कृष्ण, सुदामा का नाम सुनते ही धाये-धाये आये द्वार तक पहुँचे और सुदामा को छाती से लगा लिया, अंदर लाये, चौकी पर बिठाया और उनके चरण पखारन लगे। अद्‌भुत दृश्य था। नरोत्तम दास ने इस दृश्य पर अपनी कलम का जादू दिखाया है, चित्रकारों ने चित्र बनाये हैं। ऐसे चित्रों के कलैंडर पिछली शताब्दी तक बाजारों में बिकते व घरों में लगाये जाते थे, हमने भी देखे थे। अब वे गायब हो गये हैं। अब कुंभनदास जैसे संत और कृष्ण-सुदामा जैसी दोस्ती भी नहीं रही।

कुंभनदास का युग सदियों पीछे चला गया है। अब बड़ी सीकरी दिल्ली है और छोटी-छोटी सीकरी भोपाल, लखनऊ, पटना, जयपुर, मुंबई, चेन्नई, कोलकाता, हैदराबाद, बैंगलौर, अहमदाबाद आदि में बन गई हैं। अब नाना प्रकार की कलाएँ हैं, नाना प्रकार के कलाकार हैं। कलाकार अपनी कलाएँ दिखाते हैं सम्मान पाते हैं। कलाओं के सारे केन्द्र बड़ी व छोटी सीकरियों में सिमट गये हैं। एक जमाना था जब मध्यप्रदेश में एक कवि, संस्कृति सचिव था, वहाँ भारत भवन बना था तब वहाँ कविता की वापसी हुई थी। दूर-दूर से भरतपुर के घना अभयारण्य के पक्षियों की तरह भोपाल तक कवि लोग ऐयर से या ए० सी० से आते और ए० सी० रूम में 25-30 लोगों को अपनी कविताएँ सुनाकर अपना चैक ले जाते। यह बात दूसरी थी कि उन 25-30 श्रोताओं में अधिकांश भारत भवन के ही श्रोता होते जिनकी नौकरी का एक अंग यह दायित्व भी था। तब धडल्ले से अपना कविता संग्रह ख्यात-प्रख्यात होने वाले कवियों के छपकर सरकारी खरीद में उनके गोदामों में भरे थे। इस प्रकार हुई थी तब कविता की वापसी। वही कवि कुलपति बन वर्धा को दिल्ली में स्थापित कर महात्मा गाँधी हिन्दी विश्वविद्यालय को दिल्ली में स्थापित कर चुके हैं और परिन्दे से प्रसिद्ध हुए निर्मल वर्मा कुलाधिपति हैं। वे सदा एकवचन रहे किंतु बहुवचन पत्रिका निकालते हैं जिसके मोटे अंक विश्व हिंदी सम्मेलन लंदन में फ्री बंटने के लिए हवाई जहाज से ले जाये गये थे और जिन्हें वे वितरित किए गये थे वो उन्हें भारी बोझ के कारण अपने होटल में ही छोड़ आये थे। उन्होंने सोचा इतने वजन की लंदन से कोई चीज ही अपने घर वालों के लिए ले चलेंगे ताकि घरवाली व बच्चे प्रसन्न होंगे। बाद में बैरों ने उन्हें रद्दी में बेच बादाम खरीदे थे।

वर्तमान में सीकरियाँ संतन से भर रही हैं। गाँवों, कस्बों, नगरों में रहने वाले सभी संत अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर सीकरियों की ओर भाग रहे हैं और वहाँ भेड़-बकरियों के रेवड बनने को अभिशप्त हैं। उनमें से कुछेक राजनेताओं के मुसाहिब होकर उनके भाषण लिख रहे हैं, कुछेक चुनाव घोषणा पत्रों के मसाविदे तैयार कर रहे हैं कुछेक प्रिंट मीडिया में हैं

तो कुछेक आकाशवाणी व दूरदर्शन में कोकिलकंठी बन गये हैं। कुछेक अकादमियों के कर्मचारी बन गये हैं तो कुछेक किसी न किसी संस्थान में प्रवेश के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं। कुछेक मंत्रालयों की परामर्श समितियों में प्रवेश के लिए प्रवेश द्वार पर पंक्तिबद्ध खड़े हैं।

जब पुरस्कारों का मौसम आता है तो प्रकाशक-लेखक सीकरी में डेरा जमाते हैं। पारितोषिक वितरण की घोषणा सीकरी में ही होती है। वर्ष में सरकारी खरीद भी पुस्तकों व चित्रों की खरीद एक बार ही वित्तीय सत्र की समाप्ति पर होती है तब सब संत सीकरी की ओर भागते हैं जो वहाँ जमे होते हैं वे अपनी व्यवस्थाओं में जुट जाते हैं। अब सीकरी में ही अधिकांश राष्ट्रीय गोष्ठियाँ, सेमिनार होती हैं या विदेशों में साँस्कृतिक आदान-प्रदान के अन्तर्गत लेखकों व कलाकारों के जत्थे जाते हैं। इनका चयन सीकरी के मुसाहिबों से ही होते हैं। जो सीकरी से दूर रहते हैं ताकते ही रहते हैं। सीकरी में ही स्थित हैं विदेशों के दूतावास, साँस्कृतिक मिशन। यहाँ से फ्रीलांसर लेखकों को अनुवाद का जो कार्य मिलता है और साथ में विदेशी मदिरा की बोतलें ओर गोरी चमड़ी की महिलाओं से संभाषण का अवसर।

फलतः वर्तमान में आज के संतों ने सीकरी में अपने आश्रम व मठ बना लिए हैं इनके शिष्य भी अनगिनत हैं जो इन वातानुकूलित आश्रम की शोभा बढ़ाते हुए अपनी श्रीवृद्धि करते हैं। आज का युग सीकरी में ही रहने का है। नंगे भूखे व असुविधा में रहने से बुद्धि कुंद होती है, ऐसा आधुनिक संतों ने मान लिया है।

संपर्क : 88, आर्य नगर, अलवर - 301001

दो कविताएँ :

पुकार

❑ लक्ष्मीकांत मुकुल

चोर बत्तियाँ घूम गयी थीं
फूस की झुग्गियों की राह में
चले आये थे बच्चे
बधार के कामों से लौटकर
चाँद उगा नहीं था
करीब-करीब उगने को था
काली माई के चबूतरे पर खड़े
नीम की पुलुईं पर

कबूतरों के जोड़े
बझ गये थे दानें टोहने की होड़ में
बैलों की घंटियाँ टुनटुना रही थीं लगातार
टूटता जा रहा था नादों में पसरा हुआ
निस्तब्धता का जाल

चिड़ियों के बोल गुम थे
बेआवाज था पत्तों का टूटना
खेतों में पसरा था पानी, होकर लाल
पश्चिमाकाश के सामने
हरियाली सिकुड़ती जा रही थी
झाड़-झुनूस की लताओं में बुझती-सी

पुकार उठी थीं धरती की थनें
जैसे गोहरा रही हो माँ की घुटती हुई रूह
घुमड़ो आकाश!
रेत होती नदियों में बह निकले कागज की नाव
जुड़ा जाये छाती देखकर पेड़ों की हरीतिमा।

☆ ☆ ☆

कितना मुश्किल होता है

केले के टुकड़े-टुकड़े पत्तों के बीच
छिप जाता था मेरा उदास घर
पहाड़ों के पार से चली आती बंसी की धुन
मांड के टमकते भात-गंध में
झूमने लगता था समूचा कुनबा

कम नहीं होता समय की
अंधड़ों में सब कुछ सहन कर पाना
सहम कर मौन साध लेना
रात गहराते हुए आंगन में
जूठन पड़े बर्त्तनों का हवाओं से खड़खड़ाना
और लुढ़कते हुए पसर जाना ओसारे में

कितना मुश्किल होता है मुश्किल
लौट आना यात्राओं से
आदिम पुनर्जागरण की इन क्रूर घड़ियों में भी।

संपर्कः द्वारा-श्री सिंहासन मिश्र, टीचर्स कालोनी,
चरित्रवन, बक्सर-802101 (बिहार)

☆ ☆ ☆

यह आवाज

❑ राजेन्द्र उपाध्याय

कोई मुझे अब अपने सपने में देखता नहीं
कोई मुझे अपना सपना सुनाता नहीं।
कोई दबे पांव मेरे सपने में आता नहीं
कोई किसी खूबसूरत सपने की तरह अब मिलता नहीं।
मैं किससे कहूं अब अपने भयावह स्वप्नों के बारे में
अपने झुलसे हुए दिनों के बारे में
लू से झुलसकर मैं किसकी ममतामयी छांव में जाऊं
मैं ही अक्सर उनके भूले हुए पते याद करता हूं
उनके खत अब मेरे दरवाजे नहीं आते।
मैं ही सुनता हूं उनकी आवाजें अक्सर अकेले में
वे जो गूंगे हो गए हैं,
वे जो सुनते नहीं
मैं उन तक पहुंचा रहा हूं अपनी यह आवाज!

सम्पर्क :–62 बी, लॉ अपार्टमेंटस
ए. जी. सी. आर. इन्क्लेव, दिल्ली–110 092

☆ ☆ ☆

मैं शरीर नहीं हूँ !

❑ राजेन्द्र निशेश

मैं कोई शरीर नहीं हूँ
जो तुम्हारे
बमों से छलनी हो जाऊंगा
या
तुम्हारे ख़ूनी पंजे
मेरी आँखों को
नोच पायेंगे;
मैं तो अज़र अमर आत्मा हूँ
जो कभी मर नहीं सकती।

तुम आँधे कुँऐ के
मेंढक हो
जिसे कुछ भी दिखलाई नहीं देता
अपने सिवाय;
तुम्हारा मस्तिष्क
अपने ही ताने बाने में
उलझा पड़ा है
मकड़ी के ज़ाले की तरह।
मेरी आँखें सतर्क हैं
मैं स्वतन्त्र हूं;
मैं कभी मर नहीं सकता
क्योंकि मैं तो आत्मा हूँ
कोई शरीर नहीं हूं
जो तुम्हारी गोलियों से
छलनी हो जाऊँगा।

संपर्क :–2698, सैक्टर 40 सी०, चण्डीगढ़–160 036

☆ ☆ ☆

दो कविताएं जसबीर चावला की

आदूविंचकी

हमारे यहां भी खिलते हैं तान्!
फूल आदूविंचकी
हवा से हल्के जिन्हें
टूट बिखर जाना होता है फूँकते।

रेशा-रेशा हो उड़ जाते हैं;
बचा रह जाता है तो वक्त
दर्ज़ होकर यादों में
नहीं हल्की पड़ती तो वह छबि
शरारती, जिस तरह छोड़े थे बुलबुले
सफेद रूई से इनके पंख तूने
होठों से छुआ मेरी तरफ।
पता था कहीं गुम जो जायेंगे
हम भी आदूविंचकी परदेशी
इसी दुनिया में तान्।
नहीं मिल पायेंगे ओर-छोर
रूस-हिंदुस्तान।
फिर भी कितनी लंबी उम्र होती है
प्यार-भरी दो घड़ियों की
जब एक-सा धड़कें दिल
ब्रह्माण्ड के किसी कोने
भूलकर सब कुछ
खिलते हैं आदूविंचकी यूं ही
बिना बताये नज़रों से दूर
उड़ने को हवा में रेशा-रेशा।

☆ ☆ ☆

युद्ध

युद्ध शुरू हो चुका है
लाशें मवेशियों की तरह सीमाओं में घुस रही हैं
नदियों में बहकर,
बाँक से बँधकर।

नहीं बजे शंख
टंकरे तूणीर तो क्या हुआ?
देखो अखबार
फोन-फैक्स भरमार
जवाबी बौछार
सरहदों के आर-पार
बचान बेशुमार, नियंत्रण रेखाओं के डकार
लगता नहीं युद्ध शुरू हुआ?

सम्पर्क :–1083/43 बी, चंडीगढ़–160022

☆ ☆ ☆

मंडियाँ

❑ सी. पी. सिंह

साम्बा नगर के इर्द-गिर्द,
टीलों पर बसी बस्तियाँ।
प्रदर्शित करती रही हैं,
समय-समय पर अपनी हस्तियाँ॥

यह वो मंडियाँ नहीं हैं,
जहां अनाज की बोरियाँ हैं सजती।
या सब्ज़ी-मंडियों की तरह,
जहाँ नित बोलियां हैं लगती॥

यहाँ मूल्य आँके जाते रहे हैं,
कौशल-पारंगत रणबाँकुरों के।
सह अस्तित्व की साक्षी हैं यह,
हरिजनों और ठाकुरों के॥

तेज़ गर्मी, पानी की कमी,
बंजर धरा, जिसमें पत्थर भरे।
पर दुर्गम को सुगम बनाने वाले,
हैं कब भला मुसीबतों से डरे?

शिवालिक की गोद में बसे,
कण्डी क्षेत्र के यह वासी।
हैं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए,
पर दर्शाएँ दिलों में दिलेरी ख़ासी॥

ग़ैरतमन्द एवं गौरवाभिलाषी,
आतिथ्य में नहीं इनका सानी।
वीर, पूजापाठी, खेलप्रिय,
सरलस्वभावयुक्त एवं स्वाभिमानी॥

सम्पर्क :– मण्डी-खैरी, साम्बा, जम्मू –121184

☆ ☆ ☆

गीत

❑ श्याम दत्त पराग

मैं मानव का एक हृदय हूं
मुझको तुम धन से मत तोलो।

- 0 -

कसक वेदनाओं की छाया,
सहचर मेरी रही निरन्तर।
जीवन और मरण दोनों में,
था कितना छोटा सा अन्तर।।
मैं धड़कन हूं विकल हृदय की,
प्राणों में तुम मत विष घोलो।

- 0 -

तुम हो व्यापारी प्रतिमा के,
मैं हूं श्रद्धा और भावना।
तुम निर्मम हो शैल शिला से,
मैं हूं करूणा और सांत्वना॥
मेरा मोल आंकने से,
पहले, तुम अपना हृदय टटोलो।

- 0 -

मेरी स्मृतियां अजर अमर हैं,
तेरी स्मृतियां मिटने वाली।
मेरी जीर्ण शीर्ण झोली में,
छलक रही अमृत की प्याली।
भटक चुके तुम बहुत राह से,
अब तुम व्यर्थ और मत डोलो॥
मैं मानव का एक हृदय हूं।
मुझको तुम धन से मत तोलो॥

- 0 -

संपर्क : जी. 8/24, आकाश भारती आवास, इन्द्रप्रस्थ विस्तार, प.प. गंज, दिल्ली-110092

☆ ☆ ☆

गीत

❑ बृज मोहन

हमको मधुमास के रात-दिन मिल गए।
दूर तक फूल ही फूल हैं खिल गए॥

पीली सरसों की मुस्कान जादू भरी,
गहने पहने हुए जैसे दुल्हन सजी,
आज सपनों के तारे हैं झिलमिल गए।
दूर तक फ़ूल ही फूल हैं खिल गए॥

फूल-कलियों से भंवरों की अठखेलियां।
कितनी रंगीनियां, कैसी मदहोशियां,
रूप-रस-गंध आपस में हिल-मिल गए।
दूर तक फूल ही फूल हैं खिल गए।।

आज मधुवन में कोयल की स्वर-लहरियां,
जिसके जादू से मुखरित हुआ है समां,
हंसते गाते हुए मीठे पल मिल गए।
दूर तक फूल ही फूल हैं खिल गए॥

संपर्क : 238-दीवान इस्टेट मुबारक मंडी, जम्मू

☆ ☆ ☆

गीत

❑ नरेन्द्र सिंह चिब्ब

देखो जीवन बरस रहा है बारिश की बूंदों में
इससे बगिया बगीचा महके
महके क्यारी-क्यारी
इससे धरा पे आए यौवन
लगे ये दुनिया प्यारी
देखो जीवन हर्ष रहा है बारिश की बूंदों में
इस से हर इक जीवन फलता,
फलती दुनिया सारी
इससे आए हर रंग प्यारा
लगे जो दुनिया न्यारी
देखो चातक तरस रहा है बारिश की बूंदों में
इससे भूख प्यास है मिटती
मिटे है विपदा भारी
बूंद बूंद जीवन की जननी
मौत से कभी न हारी
देखो जीवन परस रहा है बारिश की बूंदों में

☆ ☆ ☆

गीत

❑ ऊषा किरण

पंछी आंगन में तेरे चहकते रहें,
फूल खुशियों के यूंही, महकते रहें
यह दुआ है मेरी, यह दुआ है मेरी,
और लंबी हो खुशियों की, तेरी डगर
और दुआ दे तुम्हें, हर सुहानी सहर
हाथ छूटे न तुझसे उमर भर मगर
प्यार के भाव यूंही झलकते रहें
यह दुआ है मेरी, यह...
तेरे आंगन में खुशियों की बरसात हो
तुम मेरा प्यार हो, मेरे जज़्बात हो
हर जन्म में तुम्हीं से मुलाकात हो
इस जन्म की तरह, ना तरसते रहें
यह दुआ है मेरी....
मेरा मक़सद हो तुम, तुम मेरा नूर हो
कांटे राहों से तेरी, सदा दूर हों
फूल तुझसे लिपटने को मजबूर हों
जाम खुशियों के यूं ही छलकते रहें
यह दुआ है मेरी, यह दुआ है मेरी

☆ ☆ ☆

भाषान्तर

डोगरी कविता

शब्द

❑ वेद राही

कितने शब्द मैदान छोड़ कर
किनारे बैठ गए
लज्जित असमर्थ
अब इन्हें कोई नहीं बोलता
इन के अर्थ
दहशतज़दा मुसाफिरों की तरह
लाईफ़बोटों में बैठ कर
डूबते हुए जहाज़ों को छोड़ गए हैं

उस तरफ कितने शब्द
उछल उछल कर लाईनें तोड़ते
सिक्योरिटी - चैकिंग के लिए
आगे बढ़ रहे
सम्भावनाओं के नए क्षितिज तलाशने
उन का ग्लोवलाईज़ेशन हो गया है
विश्व बाज़ार की गद्दी
उन्हें आवाज़ें दे रही है
समय का गड़रिया
शब्दों की भेड़ें चराता है
मौसम उन की ऊन उतारकर ले जाता है
ऊन फिर उग आती है
मौसम फिर आ जाता है,

देखो ये शब्द
दूसरो शब्दों को कैसे
पुचकार पुचकार कर
अपने पास बिठा रहे हैं
अपनी ताकत बढ़ाने के लिऐ

उधर कितने शब्द
घात लगा कर बैठे हुए
झपट्टा मार कर
दूसरों के अर्थ छीन लेने के लिए,

कुछ शब्द
अपनी सुन्दरता से तंग आऐ हुए
हर ऐरा - गैरा हाथ मार रहा
बेमतलब,
कितने शब्द चारो पहर
नाक चढ़ा कर रखते
नखरीले, अहंकारी
किसी को मुंह न लगाते

कई शब्द कितने स्नेही, उदार
अपने आप को पूरा खोलते
लेखकों के सामने
जैसे कोई प्रेमिका अपने
प्रेमी के सम्मुख
निर्वस्त्र हो जाए,

बहुत से शब्द तबले की
थाप के समान हैं
अर्थों के घुँघरू उन्हें घेरते, लुभाते
ये उनके पीछे. जाते
दोनों उन्मत्त, विमुग्ध

एक दूसरे को छकाते
नाचते, नचाते
लगातार...

चुप रहकर भी बोलते हैं शब्द
अंधेरे में जुगनुओं की तरह
प्रार्थना में आसुओं की तरह
प्यार मे हाथों की तरह,

कितने शब्द अर्थों का भार नहीं ढोते
कितनी भाषाओं में एक जैसे होते
उस समय बोलते
जब
माँ दूध पिलाती है
कोई प्रेमिका प्यार करती है...
या जब कोई व्यक्ति
डूब रहा होता है
या
जब कोई खिलाड़ी गोल करता है
या कोई गायक जब
कोई ऐसा स्वर लगाता है जिस में
उसकी आत्मा होती है,

कुछ ऐसे शब्द भी है, जिनसे
लेखक बचते, कतराते हैं
वे शब्द
अतीत में किसी महान लेखक को
अपने स्वत्व की अंतिम बूंद
दे चुके होते हैं,

अनाड़ी हाथों में आकर
शब्द चूहों की तरह मरते हैं
कुत्ते की मौत भी

अर्थ पूर्ण शब्दों को
स्लेट पर लिख कर मिटा दो
उनके अर्थ फिर भी
बाकी रहेंगे,

शब्दों में सागर जितना
आसमान जितना अर्थ भर दो
उनका आकार उतना ही रहेगा,
वे फूलते नहीं,

पानी में दिख रहे तारों के समान
समझी शब्दों को
और उनके अर्थ
ऊपर आसमान पर झिलमिलाते देखो

शब्दों में रंग होते हैं
स्पर्श होते हैं, खुश्बू होती है
रंगों में तस्वीरें होती हैं,
स्पर्श में परिचय होते हैं,
खुश्बुओं में बुलावे होते हैं

यह देखो यह शब्द
जन्म ले रहा है, कैसे
सोच की कोख में से निकल रहा है
इसे रचने वाले हाथ
कैसे सीधा कर रहे हैं इसे
कैसे नाल काटी जा रही है इसकी
कैसे दूध पीने लगा है यह

अनुवाद - लेखक

संपर्क - बी-35 सर्वोत्तम हाऊसिंग, सोसाइटी, इर्ला ब्रिज, मुंबई - 58

☆ ☆ ☆

एक विदेशी तीर्थ-यात्रा

परंपरा के प्रति जागरूक है कोरियाई जनता

❑ डॉ० सुधेश

दक्षिणी कोरिया की यात्रा के दौरान मुझे एक विदेशी तीर्थ-यात्रा का आनन्द लेने का भी अवसर मिला। तीर्थ-स्थान देशी हो या विदेशी वहाँ एक ऐसी पावनता और अलौकिक शान्ति का अनुभव होता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। दक्षिणी कोरिया की राजधानी सियोल के एक विश्वविद्यालय में मैं भाषण देने गया था। अत: मेरी वहां की यात्रा शैक्षिक थी, पर वहां के तीर्थस्थल जाने का भी अवसर मिल गया तो मेरी यात्रा सांस्कृतिक तथा धार्मिक भी बन गई।

सिओल से लगभग 150 मील की दूरी पर पोप चू शा (Popchu Sha) नामक एक प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर है, जो चोंगा सन (Chonga San) नाम की पहाड़ियों के बीच बना है। यों तो कोरिया में छोटे बड़े पहाड़ों की संख्या बहुत है और इसकी तुलना यूरोप के स्विटज़रलैण्ड से की जा सकती है, जो लगभग पहाड़ी देश है, पर पोप चू शा मन्दिर एक ऐसे शान्त और मनोरम स्थान पर बना है कि उसके चारों ओर छोटी बड़ी पहाड़ियां हैं और उनके बीच समतल भाग पर मन्दिर बना है।

इस तीर्थ-यात्रा का सारा श्रेय डॉ० ली जंग हो को जाता है, क्योंकि उन्हीं की प्रेरणा से वहां जाने का कार्यक्रम बना। 14 मई 2001 ई० को सवेरे 7 बजे डॉ० कर्ण सिंह चौहान अतिथिगृह में आये। उनके आने के पहले मैं तैयार हो चुका था। हम दोनों भूगर्भस्थ रेलवे की गाड़ियां कई स्थानों पर बदलते लोत्ते होटल (Lotte Hotel) के पास पहुंचे, जहां डॉ० ली जंग हो हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका अपार्टमैन्ट लोत्ते होटल के निकट की किसी बस्ती में है। वह चमशिल नामक इलाके के पास है। वे हमें अपनी कार में उक्त बौद्ध मन्दिर तक ले गये। वहाँ पहुँचने में तीन घण्टे लगे और लौटने में भी इतना समय लगा। कोरिया में दूरी मापने का एक नया तरीक़ा घण्टों के हिसाब से है। किसी स्थान तक पहुँचने में कार द्वारा जितना समय लगता है, वही उसकी दूरी होती है, जैसे पन्द्रह मिनट की दूरी, एक घण्टे की दूरी आदि। इस

तरीक़े से उक्त बौद्ध मन्दिर सिओल से तीन घण्टे की दूरी पर है। वैज्ञानिक चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों, नक्षत्रों की दूरी प्रकाश की गति के हिसाब से मापते हैं। तो कार की गति से धरती को मापने का ढंग कुछ तो वैज्ञानिक हुआ।

कार सिओल से बाहर निकल कर अनेक गांवों, नदी, नालों, घाटी की तिरछी, ऊंची-नीची सड़कों आदि को पार कर दौड़ी जा रही थी। ऐसा लगता था कि हम किसी पहाड़ी यात्रा पर जा रहे हैं। एक पहाड़ी की बग़ल से निकलते तो थोड़ी देर में दूसरी पहाड़ी आंखों के सामने आ खड़ी होती। हर पहाड़ी पर हरियाली लदी हुई है। कहीं कहीं तरह तरह के फूल नज़र आते। कई जगह ऐसा लगा कि हम किसी छोटे नगर के बीच से गुज़र रहे हैं। कुछ दुकानें और साइनबोर्ड नज़र आते, जिन पर कोरियन भाषा में कुछ लिखा होता।

रास्ते में चियोंगजू (Cheongju) नामक शहर पड़ा। उसकी चौड़ी सड़कों, मकानों, दुकानों और औद्योगिक भवनों को देख कर लगा कि यह एक बड़ा शहर है। ली जंग हो ने बताया कि चियोंगजू किसी प्रदेश की राजधानी है। तात्पर्य यह कि हम किसी अन्य प्रदेश में से गुज़र रहे थे।

तीन घण्टों की कार-यात्रा के बाद हम पोप चू शा मन्दिर के पास पहुँच गये। रास्ते में एक लम्बा चौड़ा जंगल पड़ा, जिसे राष्ट्रीय उद्यान के रूप में विकसित किया गया है। तात्पर्य यह कि राष्ट्रीय उद्यान को पार कर मन्दिर तक पहुँचा जाता है। कोरिया में जंगल के पेड़ों, पौधों, फूलों को बचाने में गहरी रुचि ली जाती है। कई जगह ऐसे जंगलों को राष्ट्रीय उद्यान बना दिया गया है। वहां किसी पेड़ को काटना कानूनी अपराध माना जाता है। उस उद्यान में घूमने का तो समय नहीं था, पर उसके ऊंचे पेड़ों, हरियाली के वैभव, और रंग-बिरंगे फूलों को देख कर आंखें तृप्त हो गईं। उद्यान के बीच ऐसी भीनी और ठण्डी हवा चल रही थी, जैसी दिल्ली में नवम्बर-दिसम्बर में चला करती है।

अन्ततः हम तीनों बौद्ध मन्दिर तक पहुँच गये। ली जंग हो ने बताया कि यह कोरिया के तीन बड़े बौद्ध मन्दिरों में से एक है। बाहर लगे सफ़ेद पत्थर पर अंकित है कि इसकी स्थापना सन् 553 ई० में एक बौद्ध विहार के रूप में की गई थी। सन् 1592 से 1595 ई० के बीच जापानियों के आक्रमणों के बीच यह बौद्ध विहार आग की भेंट चढ़ गया। कई राजाओं के शासनकाल में अनेक राजनीतिक परिवर्तनों का शिकार यह बौद्ध विहार भी हुआ। सन् 1771 ई० में इसका जीर्णोद्धार हुआ था। ये सब सूचनाएं उस सफ़ेद पत्थर पर काली रोशनाई में अंकित हैं।

मैं सोचने लगा कि इस जैसे बौद्ध विहारों. बौद्ध मन्दिरों ने राजाओं का क्या बिगाड़ा था कि उन्हें उनकी राजनीति का शिकार होना पड़ा। इन विहारों में बौद्धभिक्षु रहते थे, जो बुद्ध की शिक्षाओं पर चलते हुए शान्ति और करुणा का सन्देश देते थे। क्या तत्कालीन राजनीति उसे सहन नहीं कर सकी? मैं सोच में पड़ गया कि ये बौद्ध मन्दिर और विहार क्या तत्कालीन राजनीति के लिए कोई चुनौती थे? आज की राजनीति भी मन्दिरों, गिरजाघरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों का उपयोग अपने निहित स्वार्थों के लिए करती है। तब कोरिया के प्राचीन शासक और आधुनिक युग की जापानी सत्ता बौद्ध मन्दिरों तक अपने हाथ क्यों न फैलाती? मानव दुनिया भर में एक जैसा क्रूर और करुणा की मूर्ति है। यदि मानवीय क्रूरता की कोई सीमा नहीं तो उसकी करुणा और मानवीयता का भी कोई अन्त नहीं है। अन्तर इतना है कि क्रूरता मिट जाती है और करुणा तथा मानवीयता सदा अमर और स्मरणीय रहती है। ऐसी करुणा के प्रतीक हैं बुद्ध, जिनके निशान न जाने दुनिया के कितने देशों में बिखरे हुए हैं।

मेरी सोच का क्रम तब टूटा जब बताया गया कि यह बौद्ध मन्दिर कोरिया के तीन बड़े मन्दिरों में से एक है। मन्दिर के मुख्य द्वार से हमने अन्दर प्रवेश किया। सामने एक बड़ा प्रांगण है। द्वार के ठीक सामने प्रांगण के पार मुख्य मन्दिर है। उसके बाहर जूते निकाल कर हम तीनों मन्दिर के अन्दर गये। वहां बुद्ध की तीन बड़ी मूर्तियां हैं, जिन पर सोने का पानी चढ़ाया गया है। वे स्वर्ण मूर्तियाँ प्रतीत होती हैं। कलाकार ने महात्मा बुद्ध की करुणा, शान्त प्रकृति, चिन्तनशीलता को प्रस्तर मूर्तियों में साकार कर दिया है। वे मूर्तिकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। तीनों मूर्तियों में बुद्ध की मुखाकृति गोल है, जो मंगोल जाति के लक्षणों में से एक है। हर देश की मूर्तिकला पर तथा अन्य कलाओं पर स्थानीय प्रभावों की गहरी छाप होती है।

डॉ० ली जंग हो ने तीन बार धरती पर माथा टेक कर प्रतिमाओं के प्रति श्रद्धा प्रकट की। कर्ण सिंह चौहान ने भी धरती पर माथा टेका। तब मुझे ध्यान आया कि यह बौद्ध मन्दिर है, कोई संग्रहालय नहीं, जहां पुरातात्विक वस्तुओं का निरीक्षण कर उनकी कलात्मकता को परखा जाए। बुद्ध के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण मैंने सिर झुका हाथ जोड़ कर अपनी श्रद्धा व्यक्त की, पर न जाने किस प्रेरणा से धरती पर माथा न टेक सका। शायद मेरी विचारमग्नता मेरी श्रद्धा पर हावी हो गई थी। मैं हाथ जोड़े सिर झुकाये काफ़ी देर प्रतिमाओं के सामने खड़ा रहा। न जाने मन के किस कोने से आवाज़ आई– ''बुद्ध मूर्तिपूजा के खिलाफ थे, क्योंकि वे ईश्वर के साकार रूप में विश्वास नहीं रखते थे। उनकी ईश्वर में ही आस्था नहीं थी। उनका धर्मदर्शन अनीश्वरवादी है। तब उनकी प्रतिमा की पूजा क्यों?''

यह दार्शनिक प्रश्न हो सकता है, जिसका उत्तर अलग अलग दर्शन भिन्न भिन्न ढंग

से देंगे। इस्लाम में मूर्तिपूजा बहिष्कृत है, पर मक्का में संगे असवद को चूमना कुफ्र नहीं है। जैन धर्म में भी मूर्तिपूजा का स्थान नहीं है, पर जैन मन्दिरों में विभिन्न तीर्थकरों की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। भारत में और विदेशों में यही बौद्ध धर्म के साथ हुआ। श्रद्धालु मानव की कठिनाई यह है कि वह अपने श्रद्धापात्र को ईश्वर या ईश्वरावतार बना कर ही सन्तोष पाता है और अवतार का शरीर नष्ट हो जाता है तो वह उसकी मूर्ति को पूजने लगता है। यह काम चाहे कितना अतार्किक हो पर यह श्रद्धालु को सन्तोष देता है, एक भावात्मक संबल देता है। धर्म-दर्शन के सिद्धान्त अपनी जगह कितने अटल हों, पर उनके अनुयायी उनका पालन अपने ढंग से करते हैं, प्राय: ऐसे ढंग से जिससे उन्हें भावात्मक तुष्टि मिले। धर्म जब भावना के रूप में रूपान्तरित होता है तो तर्क पीछे छूट जाता है और व्यावहारिक स्तर पर धर्म काफ़ी कुछ बदल जाता है। सिद्धान्त, भावना और व्यवहार के बीच का यह द्वन्द्व शायद मानवइतिहास में सदा बना रहेगा। पर मन्दिर में खड़ा होकर इतनी विचारशीलता किस काम की? वहां तो भक्त की तरह जाना चाहिए।

मन्दिर के खुले प्रागंण में बुद्ध की विशाल प्रतिमा स्थापित है, जो धरती से 20-25 फिट ऊंची होगी। उस पर भी स्वर्णजल चढ़ा हुआ है। आजकल प्रतिमा के मुख को छोड़ कर सारा भाग ढका हुआ है, क्योंकि सुधार या मरम्मत का काम चल रहा है। यह विशाल प्रतिमा अफ़गानिस्तान के बामियान में बुद्ध की ऊंची प्रतिमा का स्मरण कराती है, जिसे कठमुल्लाओं ने ध्वस्त कर दिया। प्रतिमा के आगे खड़े होकर हमने कुछ फोटो खींचें।

विशाल प्रतिमा जिस ढांचे पर खड़ी है, उसके नीचे के द्वार से हम लोग अन्दर गये तो देखा कि वृत्ताकार गर्भगृह में भी बुद्ध की प्रतिमा स्थापित है। उसके बराबर के कक्ष में कोरिया के कुछ मुख्य बौद्ध भिक्षुओं के चित्र उनके नामों के विवरण के साथ लगे हुए हैं।

उस विस्तृत प्रांगण के बीच में एक बड़ा कुण्ड है, जिस में पहाड़ों से रिसकर आने वाला शीतल एवं स्वच्छ जल भरा हुआ है। यह स्वत: निसृत जल का कुण्ड है। पास में एक पात्र रखा हुआ है जिसके माध्यम से जल लेकर पिया जा सकता है।

मन्दिर के प्रांगण की दीवारों से लगे भाग में बाहर की तरफ़ बौद्ध भिक्षुओं के आवास बने हुए हैं, जिनमें अनेक भिक्षुक रहते हैं। तो पोप चु शॉ एक बौद्ध मन्दिर के साथ बौद्ध विहार भी है, जहां चहल-पहल रहती है। अनेक देशी-विदेशी यात्री यहां आते रहते हैं।

लगभग एक घण्टे तक हम इस मन्दिर में रहे। बाहर निकले तो राष्ट्रीय उद्यान में से होते हुए एक बस्ती में पहुंचे। उसका नाम मालूम न हो सका, पर वहाँ कई होटल हैं, जिनमें

तीर्थ-यात्री ठहर सकते हैं। एक होटल में हमने भोजन किया, जिसमें चावल के साथ किमची (एक प्रकार का अचार) सलाद, पत्तों और अदरक के टुकड़े थे। किसी सब्ज़ी का सूप भी था जिसके साथ चावल आसानी से खा सका। मेरे कारण मेरे सहयात्रियों ने भी शाकाहारी भोजन लिया।

आगे चल कर फिर चियोंगजू नामक शहर में से गुज़रे। छोटी छोटी बस्तियां तो रास्ते में कई आती हैं। सड़क किनारे की ज़मीन पर भी खेती की जाती है। मुख्य फसल धान की है। धान के खेत सड़क के किनारे नज़र आ रहे थे। धान की पौध एक लम्बे जाल से ढक दी जाती है, जिसे ग्रीन हाउस कहा जाता है। ऐसे ग्रीन हाउस मैंने रास्ते में कई जगह देखे। इनके नीचे पौध सुरक्षित रहती है। जब बर्फ पड़ती है तब ये ग्रीन हाउस फसल को बचा कर रखते होंगे।

कुछ मील आगे चल कर एक रेस्त्राँ पड़ा। वहाँ रुक कर हम लोगों ने कॉफी पी। वहां पीछे की तरफ़ अंग्रेज़ी में कई जगह रैस्टरूम लिखा हुआ है। मैं उधर रैस्ट करने अर्थात् पेशाब करने गया। पेशाब घर को रैस्ट रूम कहने में कोई हानि नहीं है क्योंकि मूत्र-विसर्जन के बाद आराम मिलता है। पहले Lavatory शब्द चलता था। उस में Laboratory की गन्ध आई होगी, तो उसे Toilet कहने लगे होंगे, जिसका हिन्दी पर्याय प्रसाधन चलाया गया। मुझे तो वहाँ कोई प्रसाधन सामग्री नज़र नहीं आई, बल्कि साबुन तक हर बार नदारद मिला। फिर किस कारण Toilet को प्रसाधन-कक्ष कहा गया? अब यह शब्द बी पुराने युग के पिछड़ेपन का सूचक हो गया है। भारत में उसके लिए सर्वव्यापक शब्द बाथरूम है, क्योंकि जहां पेशाब्र करने की सुविधा है, वहां स्नान भी किया जा सकता है। पेशाब घर कहना गँवारूपन का सूचक है। उसके स्थान पर बाथरूम कहना सभ्यता का सूचक है। पर कोरिया में बाथरूम शब्द भी खोटा सिक्का हो गया है। उसका स्थान रैस्टरूम ने ले लिया है। शब्दों के अर्थ कैसे बदलते हैं, कैसे उनका उत्कर्ष होता है और कैसे अपकर्ष, यह एक रोचक अध्ययन है।

डॉ० ली जंग हो ने बताया कि अमेरिका में bathroom के स्थान पर सब जगह Restroom शब्द चलता है। वे डेढ़ साल अमेरिका में बिताकर सितम्बर 1999 में कोरिया लौटे। उनका अनुभव नया है, अत: प्रामाणिक है।

कार-यात्रा के दौरान डॉ० ली ने बताया था कि कोरिया में बौद्ध धर्म में आस्था रखने वालों की संख्या सबसे अधिक है। उनसे कम संख्या वहां के ईसाइयों की है। मुसलमानों की संख्या वहां नगण्य है। आजकल कोरिया में ईसाइयत का प्रचार बढ़ रहा है। बौद्ध धर्म की व्यावहारिकता और लचीलेपन के कारण कोरिया में बौद्ध धर्म उसके आधुनिकीकरण में बाधक

नहीं है।

लगभग सवा चार बजे डॉ० ली ने हमें एक सबवे स्टेशन पर छोड़ा, जहां से रेलगाड़ी लेकर हम seseo स्टेशन पर उतरे। वहां से दूसरी गाड़ी लेकर osco स्टेशन पर पहुंचे। प्लेटफार्म बदल कर वहां से तीसरी गाड़ी लेकर हम हांकुक विश्वविद्यालय के स्टेशन पर पहुंच गये। इस प्रकार हमारी तीर्थयात्रा सम्पन्न हुई।

इस प्रकार के छोटे बड़े बौद्ध मन्दिर कोरिया में अनेक हैं, जिनमें बौद्ध भिक्षुक भी रहते है। वहां बुद्ध की प्रतिमा की पूजा की जाती है और उसके सामने नित्य प्रार्थना होती है। जब हम पोप चु शा मन्दिर में पहुंचे तो एक अधेड़ उम्र की महिला फर्श पर बैठी किसी पुस्तक में से कोई प्रार्थना पढ़ रही थी। भिक्षुओं की पूजा पद्धति और प्रार्थना के समय आदि की जानकारी तो मुझे नहीं मिल सकी पर मुझे लगा कि वहां बुद्ध की पूजा भारत के हिन्दू देवताओं की तरह होती है। कर्म काण्ड और पूजा विधियों में अन्तर होगा, पर समग्रतः वह मूर्त्तिपूजा ही है।

जब मैं अतिथि-गृह में लौटा तो एक नया अनुभव लेकर लौटा। सिओल एक विकसित आधुनिक महानगर है, जिसे आधुनिकता का दर्पण कहा जा सकता है। बौद्ध मन्दिर की वास्तुकला, उसका रख रखाव और उसके पवित्र वातावरण को देखकर मुझे अनुभव हुआ कि कोरिया वासियों ने अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सँभाल कर रखा है। आधुनिकता के साथ अपनी परम्परा के प्रति जागरूकता भी कोरियाई जनता में है, इसका सुखद अनुभव मुझे इस तीर्थ-यात्रा के दौरान हुआ।

संपर्क : ए-34, न्यू इण्डिया अपार्टमेन्ट्स रोहिणी,
सैक्टर-9, नई दिल्ली-110 085

स्मरण

क्रान्तिवीर मदनलाल ढींगरा

❑ भगवान देव 'चैतन्य'

क्रान्तिवीर मदन लाल ढींगरा का जन्म पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में हुआ था। मदन लाल ढींगरा के पिता सम्पन्न तथा अमृतसर के प्रमुख चिकित्सकों में से एक थे। उनकी ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विशेष अनुरक्ति थी। यहां तक कि जितनी आस्था उन्हें परमात्मा पर थी उतनी ही ब्रिटिश साम्राज्य पर भी। मदन लाल जी का भाई भी अपने पिता के समान अंग्रेज राज्य का ही भक्त था। मदन लाल बचपन से ही मेधावी वृति का था। खेल कूद में वह जितना पारंगत था उतना ही पढ़ाई में भी था। उसकी प्रारंभिक पढ़ाई अमृतसर और लाहौर में हुई। अपने प्रारंभिक काल से ही उसने लन्दन जाकर अभियन्ता बनने का सपना संजोया हुआ था। वह बचपन से ही स्वाभिमानी भी था क्योंकि इस सपनें को वह अपने पिता के धन से नहीं बल्कि अपने परिश्रम से कमाए धन से साकारता देना चाहता था। हालांकि उसके पिता बहुत सम्पन्न थे तथा मदन लाल के एक भाई पहले ही लन्दन में चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन करने गया था और वहीं का निवासी हो गया था। मदन लाल धन कमाने के लिए कश्मीर चला गया और फिर वहां से शिमला तथा कोलकाटांगा में जाकर काम किया। अन्तत: अपने सपने को साकारता देने के लिए मदन लाल ने जुलाई, 1906 ई० को एक जलयान द्वारा लन्दन के लिए प्रस्थान किया। इंग्लैण्ड पंहुचने पर उसने अक्तूबर महीने में विश्व विद्यालय में प्रवेश ले लिया तथा अपने सपने को साकारता देने की दिशा में वह बहुत आशावान था। वहां जाकर उसने विशेष प्रसन्नता का अनुभव किया था। खूब ठाट-बाट से अपना जीवन यापन करने लगा। अन्य अनेक युवकों के समान वह भी वहां की चकाचौन्ध में लगभग खो सा गया मगर जो व्यक्ति संसार में कुछ महान काम करने के लिए आया होता है उसे उस महानता के शिखर को छूने के लिए अवसर व परिस्थियां मिल ही जाया करती हैं। महान समाज सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इंग्लैण्ड में इण्डिया हाऊस की स्थापना की जहां वीर सावरकर जैसे अनेक क्रान्तिकारियों ने अपनी गतिविधियां चलाईं। सावरकर पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा प्रदत शिवाजी छात्रवृति पर लन्दन में अध्ययन करने गए थे मगर वहां उनके मन में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष करने की कामना और अधिक प्रबल हो गई।

एक दिन मदन लाल को इण्डिया हाऊस के सम्बन्ध में जानकारी मिली और वहां के सक्रिय क्रान्तिकारियों के साहस पूर्ण कार्यों की चर्चा भी सुनी। वह भी इण्डिया हाऊस पंहुच गया। जिस समय वह इण्डिया हाऊस पंहुचा उस समय वीर विनायक दामोदर सावरकर अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा

मातृभूमि की दासता और उसे मुक्त कराने के बारे में बोल रहे थे। मदन लाल पर उनकी उस ओजस्वी वाणी का जादू का सा प्रभाव हुआ और उसे हृदय में देश प्रेम तथा भारत मां को स्वतन्त्र कराने के विचार हिलोरे लेने लगे। बस उसी दिन से वीर सावरकर जी उसके प्रेरणा स्रोत बन गए ओर उसने उन्हें अपने हृदय में सर्वोच्च स्थान दे दिया। उनकी वाणी को सुनने के लिए वह हमेशा लालायित रहने लगा। वीर सावरकर की प्रेरणामयी बातों को सुनकर उसके हृदय में क्रान्ति के बीज दृढ़ से दृढ़तर होते चले गए। सन् 1908 में सावरकर जी ने लन्दन में अभिनव समारोह का आयोजन किया। यह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की 50 वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में मनाया गया था। छात्रों सहित उस समारोह में लन्दन के प्रवासी भारतीयों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। वास्तव में इस समारोह का लक्ष्य ही भारतीयों के हृदयों में स्वतन्त्रता की अग्नि को तेज करना था। विशेषकर छात्रों ने इस समारोह को सफल बनाने के लिए बहुत परिश्रम किया। उन्होंने 1857 की पवित्र स्मृति के सूचक बिल्ले धारण किए। इन बिल्लों को देखकर ब्रिटिशों को बहुत क्रोध आया मगर छात्रों का जोश तो देखते ही बनता था। जहां एक ओर यह जोश स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम के रणबांकुरों को स्मरण कराता था वहीं दूसरी ओर भावि स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रति भी आशावान बनाता था। अंग्रेजों का इससे बौखला जाना स्वाभाविक ही था। उनके घर में बैठकर ही उन्हें चुनौति दी जा रही थी। ढींगरा ने भी उस दिन अपना चमचमाता सूट पहना हुआ था तथा कोट पर वही चमचमाता बिल्ला शोभायमान था। मदनलाल के इस नए परिधान से सहसा उसका एक अंग्रेज मित्र क्रोधित हो उठा। उसने आव देखा न ताव एकदम मदन लाल के इस बिल्ले को उतारने के लिए झपट पड़ा। इससे पूर्व कि वह अंग्रेज युवक यह कुकृत्य करता ढींगरा ने उसके मुंह पर एक जोरदार तमाजा दे मारा। फिर उसे नीचे गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा और बोला, 'क्या तुम मेरे देश के सम्मान के प्रतीक को छूने का दुस्साहस करोगे?' अंग्रेज युवक गिड़गिड़ाया, 'परमात्मा के लिए मुझे क्षमा कर दो मदन मैं अब कभी तुम्हें नहीं छेड़ूंगा।' मदन लाल ने यह कहते हुए उसे क्षमा कर दिया, 'खबरदार भविष्य में कभी भी किसी भारतीय को अपमानित न करना।'

अभिनव समारोह ने मदनलाल के हृदय में और भी अधिक ओजस्विता प्रवाहित कर दी और वह पूरी तरह से भारत की स्वतन्त्रता के लिए चिन्तन करने लगा। एक दिन मित्र मण्डली में जापानियों की देशभक्ति की चर्चा हो रही थी तो मदन लाल ने तुरन्त कहा, 'क्या तुम समझते हो कि हम हिन्दू किसी भी तरह उनसे कम हैं? समय तो आने दो, हिन्दू समस्त संसार को अपनी अजेय शक्ति का परिचय प्रदान करेंगे।' ढींगरा की इस बात को मित्र मण्डली ने उपहास में उड़ाते हुए कहा, 'अरे हां हां तुम्हें हम जानते हैं। तुम भाग निकलने में बड़े ही सिद्धहस्त हो।' मित्र मण्डली ने उसके साहस और शौर्य की परीक्षा लेनी चाही। उसमें से एक ने मोटी और तिखी कील मदन की ओर बढ़ाई तो मदन ने तुरन्त अपना हाथ आगे कर दिया। उस व्यक्ति ने कील मदन की हथेली पर रखी और धीरे-धीरे अपने दबाब को बढ़ाने लगा। अरे, धीरे-धीरे कील मदन लाल की हथेली को पार कर गई मगर इस बहादुर के चेहरे पर जरा सा भी दर्द का आभास या किसी प्रकार की

शिकन नहीं थी। मित्र ने झटके से साथ कील निकाल दी। खून की धारा बह निकली मगर मदन तो ऐसे निर्द्वन्द्व और शान्त खड़ा था मानों कुछ हुआ ही न हो। बल्कि यह देखकर तो मित्र मण्डली स्तंभित रह गई कि मदन मुस्करा रहा है। मदन लाल का व्यक्तित्व जहां एक ओर साहस और जोश से परिपूर्ण था वहीं दूसरी ओर वह हमेशा मस्ती में रहता था। उसे सावरकर के अतिरिक्त किसी और का भाषण इतना अधिक प्रेरणाप्रद नहीं लगता था। यही कारण था कि वह निरन्तर इण्डिया हाऊस जाता तो था मगर सावरकर के अतिरिक्त वह किसी और में इतनी रूचि नहीं लेता था। एक दिन उसे क्या सूझी कि कहीं से ग्रामोफोन ले आया और उसे सड़क की ओर खुलने वाली खिड़की पर रखकर रिकार्ड चालू कर दिया। संगीत सुनकर कुछ युवक और युवतियां वहां एकत्रित होकर नाचने और गाने लगे। स्वयं मदन लाल भी सिटीयां बजा बजाकर उसमें उन युवकों और युवतियों का सहयोग देने लगा। इस संगीत से भीतर चल रही बैठक में व्यवधान पैदा हो रहा था। सावरकर ने आकर मदन लाल को इस कृत्य पर खूब झाड़ पिलाई तो ढींगरा पानी-पानी हो गया। इस घटना से उसे बहुत सन्ताप और पछतावा भी हुआ। शर्म के कारण उसका दो मास तक इण्डिया हाऊस जाने का साहस तक न हुआ। व्यक्ति के महान बनने में हर अच्छी-बुरी घटना अपनी भूमिका निभाती है। इन दो महीनों ने मानों मदन लाल को आत्मचिन्तन का अवसर प्रदान किया और जब वह दो मास के बाद इण्डिया हाऊस आया तो अपने प्रेरणादायक सावरकर जी से गंभीर होकर पूछा, 'सावरकर जी अब मुझे बताईए कि क्या मेरे बलिदान देने की घड़ी आ गई है?' सावरकर ने भी उसी गंभीरता से उत्तर दिया, 'मदन! यदि बलिदान के लिए सन्नध व्यक्ति स्वतः यह अनुभव करे कि अवसर आ गया है तो उसका तात्पर्य है कि अवसर उपस्थित है।' मदन ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'तो फिर मैं तैयार हूँ।' अब मदन लाल को हर क्रान्तिकारी घटना बुरी तरह से उद्वेलित करने लगी। भारत में सक्रिय क्रान्तिकारियों के साहसपूर्ण कार्यों के समाचार से उसे अजीब प्रकार की अन्तः प्रेरणा प्राप्त होने लगी। धीरे-धीरे सुलगने वाली इस आग को सहसा प्रचण्ड रूप धारण कराने का काम किया अंग्रेजों द्वारा सावरकर के बड़े भाई गणेश सावरकर के साथ किए गए अन्याय ने। गणेश सावरकर को 'लघु अभिनव भारत मेला' नामक देशभक्ति पूर्ण कविताएं लिखने के अभियोग में बन्दी बनाकर आजीवन कालापानी की सजा दे दी। अंग्रेज जज का कथन था कि 'इन कविताओं में शिवाजी आदि अन्य वीरों का नाम लेकर अंग्रेज सरकार के विरुद्ध युद्ध घोषणा की गई है।' गणेश सावरकर को अंडमान रूपी नरक में भेजे जाने के समाचार ने मदन के हृदय में जल रही प्रतिशोध की अग्नि को और भरी अधिक प्रचण्ड कर दिया।

लन्दन में 'नेशनल इण्डियन ऐसोसिएशन' नाम की एक संस्था थी। इस संस्था का काम था भारतीय युवकों के मन में विलासिता भरकर उन्हें देश प्रेम से विमुख करना। कुमारी एम्मा जोसफिन वेक नाम की एक सुन्दरी इस संगठन की सचिव थी। यह नागिन अपने रूप सौन्दर्य में फंसाकर भारतीय युवकों को पथ भ्रष्ट करती थी। सन् 1909 में मदन लाल ढींगरा इस संस्था में

गए और वेक से मिलकर उससे मित्रता स्थापित कर ली। एक महीने बाद ही मदन लाल ने इस संस्था की सदस्यता भी ग्रहण कर ली। चालाक अंग्रेजों ने भारतीय युवकों को स्वधर्म और स्वदेश प्रेम से विमुख करने के लिए एक तीन सदस्यीय समिति का गठन भी किया था जिसके प्रमुख सदस्य थे सर विलियम कर्जन वाईली। वाईली महाधूर्त और कमीना व्यक्ति था। भारतीय युवकों को पथ भ्रष्ट करने में क्योंकि इसी की भूमिका प्रमुख थी इसलिए देशभक्त युवकों का इसके प्रति बहुत अधिक रोष था। मदन लाल ने इससे भी बाहरी मन से मित्रता साध ली। वह मदन से इण्डिया हाऊस की गतिविधियों के बारे में जानना चाहता था तथा सावरकर की अनुमति से ही मदन लाल ने कुछ बातें वाईली को बताई भी थीं ताकि वह पूरी तरह उसका विश्वास पात्र बन सके। यह वाईली मदन लाल के अंग्रेजपरस्त पिता और भाई का मित्र था। बाबाराव सावरकर को 8 जुलाई को कालेपानी की सजा सुनाई गई थी तो मदन लाल ने वाईली को समाप्त करने का प्रयास किया था मगर वह बाल-बाल बच गया था। अब मदन लाल निरन्तर इस ताक में था कि इस दुष्ट को उसकी दुष्टता का मजा चखाया जा सके।

1 जुलाई, 1909 को नेशनल इण्डियन ऐसोसिएशन की वर्ष गांठ का लन्दन के जहांगीर हाल में आयोजन किया गया। इस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में वाईली ही आने वाला था। मदन लाल आज पूरी तरह से तैयार था। उसने अपना रिवाल्वर भर कर अपने कोट में रखा हुआ था। साथ ही सावरकार द्वारा तैयार किया गया एक वक्तव्य भी सावधानी के साथ संभालकर अपनी जेब में रख लिया था। ताकि वह वक्तव्य उसके बन्दी बना लेने के बाद जन साधारण तक पहुंच सके। मदन ने समारोह में अपना स्थान ग्रहण कर लिया और वाईली के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय कर्जन वाईली भी वहां आ गया। सभा की समाप्ति तक मदन लाल चुपचाप बैठे रहे मगर ज्योंही सभा का समापन हुआ मदन ने रिवाल्वर से एक के बाद एक लगातार 6 गोलियां वाईली के ऊपर दाग दीं। वाईली घटना स्थल पर ही ढेर हो गया। सभा में भगदड़ मच गई। अंग्रेज़ों का वफादार कावसलाल काका मदन की ओर बढ़ा तो उसे भी ढींगरा की गोली का शिकार होना पड़ा। पकड़ो पकड़ो, जाने न दो की आवाज़ें आने लगीं और भीड़ में से एक व्यक्ति मदन को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा मगर मदन के उल्टे हाथ के एक भरपूर थपड़ ने उसे जमीन पर धराशाई होने को मजबूर किया। मदन लाल ने कहा, 'बस एक क्षण और, मैं तनिक अपना चश्मा लगा लूँ।' कहकर उसने इतमिनान से अपना चश्मा लगाया और फिर वहां खड़ी पुलिस से बोला, 'आओ अब तुम अपना काम करो।' ढींगरा को गिरफ्तार कर लिया गया।

मदन लाल ढींगरा को अपने इस साहसिक कार्य पर गर्व था। बन्दीगृह में भी वे अपने साहस और शौर्य का परिचय दे रहे थे। सावरकर जेल में उससे मिलने गए और पूछा कि उसे किसी वस्तु की जरूरत तो नहीं है। मदन ने उत्तर दिया, 'भाई जी, भला मुझे क्या चाहिए। कुछ भी नहीं।' मगर फिर कुछ देर सोचने के बाद बोला, 'अच्छा हो सके तो मेरे लिए दर्पण भिजवा दें।' इस पर

सावरकर ने कहा, 'मदन, तुम यहां दर्पण का क्या करोगे?' मदन लाल ने उत्तर दिया, 'भाई जी, वास्तव में बात यह है कि मैं फासी लगने के समय भी अंग्रेज़ों को यह दिखाना चाहूंगा कि उस समय भी में उतना ही प्रसन्न रहा-जितना कि कक्षा में पढ़ते समय या लन्दन में घूमते समय रहता था। मैं दिखा दूंगा कि मृत्यु का आलिंगन करते समय भी मदन लाल उतने ही ढंग से वस्त्र पहने खड़ा है, जैसे कि वह नित्यप्रति जेल के बाहर पहना करता था।' सावरकर जी उसकी बात सुनकर अवाक् से ही रह गए। धन्य है ऐसा मां का लाल। मगर जहां वीरेन्द्रनाथ चट्टोपध्याय, सावरकर, श्याम जी कृष्ण वर्मा तथा अन्य अनेक देशप्रेमियों द्वारा ढींगरा की बहादुरी के चर्चे हो रहे थे वहीं दूसरी ओर ढींगरा के पिता साहिब दत्ता ने कहा- 'मुझे शर्म आती है कि ऐसे पुत्र ने मेरे यहां जन्म पाया। मैं समझता हूं कि वह मेरा पुत्र ही नहीं है। और उसके भाई ने भी घोषित किया था कि मेरा मदन लाल से अब कोई सरोकार नहीं है, क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह एक गम्भीर अपराध है।'

मदन लाल ढींगरा का वक्तव्य जो बाद में सार्वजनिक हुआ ब्रिटिश साम्राज्य के लिए न केवल एक चुनौती था बल्कि भारतीय देशभक्तों के लिए एक प्रेरक दस्तावेज भी था-उस वक्तव्य के कुछ अंश इस प्रकार थे- 'मैं मानता हूं कि मैंने एक अंग्रेज़ का रक्त बहाने का प्रयास किया किन्तु उसका उदेश्य यही था कि अंग्रेज़ों ने जिस प्रकार भारतवर्ष के देश भक्त युवकों को फांसी, कालापानी तथा लम्बी सजाएं देने का कार्यक्रम जारी कर रखा है- उसके प्रति मैं प्रतिकारात्मक विरोध प्रकट करूँ, ऐसा करते समय मैंने अपनी आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति से नहीं पूछा न उसकी राय ली। मैंने जो कुछ किया कर्त्तव्य के नाते ही किया।'.......... 'एक हिन्दू के नाते मैं विश्वास करता हूं कि मेरे देश का जो अनादर-अपमान अंग्रेज़ कर रहे हैं वह प्रत्यक्ष परमात्मा का ही अपमान है। मेरी मान्यता है कि देश कार्य प्रभु राम और कृष्ण का ही कार्य है.... मेरे पास न धन है न कोई योग्यता ही है, अतः सिवाय अपने रक्त के यह अयोग्य पुत्र माता के पावन चरणों में और क्या अर्पित कर सकता है। उसी भावना से मैं सहर्ष बलिदान हो रहा हूँ।'... 'आज के समय में अपने प्रिय देश के लोग किस तरह स्वतन्त्रता अर्जित करने के लिए बलिदान दें तथा अपने जीवन का उत्सर्ग करें यह जान लेना प्रत्येक के लिए जरूरी है। अन्य देश बन्धुओं को यदि ये संस्कार देने हो तो आत्मोत्सर्ग के द्वारा ही वे संभव हो सकते हैं और यह संघर्ष भारत तथा इंग्लैण्ड के मध्य तब तक जारी रहेगा जब तक इंग्लैण्ड हमारे देश को अपने अधीन बनाए रखेगा। हिन्दू होने के नाते मेरा विश्वास है कि आत्मा कभी मरती नहीं अतः शरीर गिरने के पूर्व प्रत्येक भारतीय दो अंग्रेज़ों को समाप्त करता चले तो देश की स्वतन्त्रता एक दिन में प्राप्त की जा सकती है।

मेरी अन्तिम कामना है कि फिर से मैं भारत की ही गोद में शीघ्र ही जन्म लूँ तथा पुनः देश को स्वतन्त्र कराने के कार्य में संलग्न हो जाऊँ-मैं चाहूंगा कि मेरी पुनः मृत्यु होने तक मेरा प्रिय देश स्वतन्त्र हो जाए। भारत के स्वतन्त्र होने तक मैं उसी ध्येय के लिए बार-बार जन्म लूं और मृत्यु का वरण करूं। प्रभु मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें-मेरी यही कामना है। बन्दे मातरम्।'

मदन लाल पर अभियोग चला और न्यायालय की कार्रवाई जिसके बारे में मदन ने कहा था, 'आप जो भी धींगामुस्ती करना चाहते हैं, कीजिए। मुझे अदालत की कार्रवाई में कोई रूचि नहीं, आपके कानूनों पर जरा भी विश्वास नहीं। याद रखो वह समय जरूर आएगा जब हमारे देश में हमारा अपना राज्य होगा। आप लोगों को कान से पकड़ कर देश से बाहर निकाल दिया जाएगा।' अभियोग की सुनवाई की यह प्रक्रिया 25 जुलाई तक चली और न्यायालय ने अपना फैसला सुना दिया - मृत्युदण्ड। जिसके लिए 17 अगस्त, 1909 की तिथि भी नियत कर दी गई। सजा सुनने के बाद भी मदन लाल की दिनचर्या या उसके स्वभाव में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया। उसके जल पान और भोजन आदि के परिमाण में कोई कमी नहीं आई और न ही उसके मस्तमौलेपन में कोई कमी आई। अन्तत: 17 अगस्त का दिन भी आ गया। उस दिन भी इस क्रान्तिवीर ने प्रसन्नता के साथ प्रातराश किया। प्रात: नौं बजे एक पादरी ने अन्तिम प्रार्थना कराने के आशय से उसकी कोठरी में प्रवेश किया तो ढींगरा ने कहा, 'महोदय आप तशरीफ ले जाईए। मुझे आपकी जरूरत नहीं। मैं हिन्दू ही जन्मा था और हिन्दू ही के रूप में मरूंगा। तुम मेरी चिन्ता से मुक्त रहो।' फांसी का तख्ता चूमने से पूर्व ढींगरा ने अपनी कामना इस प्रकार प्रकट की थी- 'मैं उनसे कभी नहीं मिलूंगा जो इस शासन के पिट्ठू और समर्थक है।' .... 'हिन्दू द्वारा ही मेरी लाश का दाह कर्म सम्पन्न हो, कोई अंग्रेज़ उसे न छूए। उस समय वैदिक मन्त्रों का उच्चारण जरूर किया जाए। मेरे अपने सहोदर भाई जो अंग्रेज़ परस्त है मेरी मिट्टी न छू पाएं। मेरी अस्थियां भी उन्हें न दी जाएं। मेरे कमरे में जो भी पुस्तकें, कपड़े और सामान आदि हैं उन्हें बेचकर राशि राष्ट्रीय कोष में जमा करा दें ताकि वह क्रान्ति कार्यों में लग सके।'

धन्य है वह वीर और धन्य है यह भारतभूमि जिस पर ऐसे वीरपुंगव पैदा हुए हैं जिन्हें अन्तिम क्षणों में भी अपने देश और संस्कृति का इतना अधिक ध्यान है। अंग्रेज़ दरिन्दों ने उस क्रान्तिवीर की अन्तिम इच्छा भी पूरी नहीं की। उनका शव भी दाह संस्कार के लिए नहीं दिया गया बल्कि उसे जेल के ही शमशान में गाड़ने को कहा। पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा जी ने इस वीर की स्मृति में एक छात्रवृत्ति जारी की तथा महान देशभक्त लाला हरदयाल ने अगले मास वन्देमातरम् में अपनी श्रद्धांजलि देते हुए लिखा- '..... अंग्रेज़ समझते हैं कि उन्होंने मदन लाल को समाप्त कर दिया परन्तु वास्तव में वह तो अमर हो गया है। भविष्य में जब भारत में ब्रिटिश दास्ता की राख भी नहीं मिलेगी उस दिन भारत के सभी नगरों के चौराहों पर मदन लाल के महान स्मारक खड़े होंगे। उस महान् सन्तान का बलिदान भावी पीढ़ियों को सदैव यह स्मरण दिलाता रहेगा कि सात-सात समुद्र लांघ करके भी उसने अपना जीवन सर्वस्व देश के लिए न्योछावर करने में आगा-पीछा नहीं देखा।'

संपर्क : 81/एस-4 सुन्दरनगर,
ज़िला मण्डी (हि०प्र०) - 174 402

पुस्तक समीक्षा

कविता अभी भी

❑ जीवन सिंह

'कविता अभी भी' कश्मीरी भावी रतनलाल शान्त की हिंदी कविताओं का दूसरा कविता संग्रह है। इससे पूर्व 'खोटी किरणें' शीर्षक से उनका पहला हिन्दी-कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ। श्री शान्त ने हिन्दी के अलावा कश्मीरी कवि रसूलमीर तथा नुंद ऋषि (शेख नूरुद्दीन) की कविताओं का हिंदी में अनुवाद किया है। उनकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका यह भी है कि उन्होंने विश्वप्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं का कश्मीरी भाषा में रूपान्तरण कर कश्मीरी के पाठकों को विश्व-साहित्य से परिचित कराया है। आज से बहुत कठिन समय में अपनी भाषा कश्मीरी में कहानी, आलोचना-सृजन और अनुवाद करते रहने का उनका संकल्प, देश के एक महत्त्वपूर्ण भूभाग की संस्कृति की श्रीवृद्धि करना है। दरअसल, कोई भी भाषा, संस्कृति का एक ऐसा माध्यम है, जो धर्म, जाति, लिंग, वर्ग आदि की संकीर्णताओं को हटाकर एक बड़े मानव-समुदाय को जातीय एकता के सूत्र में बांधती है। कश्मीर में यह काम कश्मीरी भाषा ने किया है। कहना न होगा कि जैसे हिंदी हमको राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधती है, वैसे ही कश्मीरी भाषा पूरे कश्मीरी मानव समुदाय को एकता के सूत्र में पिरोती है। वह उन दिलों को जोड़ने का काम भी करती है, जो किन्हीं ऐतिहासिक कारणों से पारस्परिक भिन्नताएं रखते हैं। एकता के भाव को और अधिक विस्तार देने वाला दूसरा सूत्र डॉ० शान्त द्वारा किया जाने वाला हिंदी-काव्य सृजन है। इनमें वे कश्मीर की भावभूमि को हिंदी में सृजित कर एकता के एक नए सोपान को मजबूत करते हैं। 'कविता अभी भी' संग्रह की कविताओं में इस बात के अनेक प्रमाण मौजूद हैं।

श्री शान्त, कविता में जब अपने भावों के उल्लास-विषाद को वाणी देते हैं, तो प्रकृति से प्राप्त प्रसिद्ध प्रतीकों को उपयोग में लाते हुए, उसकी संरचना को कलात्मकता प्रदान करते हैं। मसलन, तुलसी के महाकाव्यात्मक व्यक्तित्व की गहराई और विस्तार को उन्होंने सीधे सीधे न कहकर समुद्र के रूप में व्यक्त किया है। चूंकि मनुष्य-जीवन समुद्र की तरह विशाल एवं गहरा है, इसलिए इसकी विशालता और गहराई को नापने के लिए उतने ही बड़े रचनात्मक व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। तुलसी का व्यक्तित्व ऐसा ही था। एक अहिन्दी भाषी हिंदी-कवि तुलसी के व्यक्तित्व को अपनी कविता का कथ्य बनाता है। दरअसल, यह मानवीय

विभिन्नताओं के भीतर की एकता का प्रमाण है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 'साहित्य अकादमी' का उद्घाटन करते हुए डॉ० राधाकृष्णन् ने कहा था कि ''भारत में भाषाएं तो अनेक हैं किन्तु साहित्य एक है।'' भारत की संस्कृति का यह बड़ा सत्य है।

रतनलाल शान्त जैसे कवियों की कविताओं में इसके अनेक प्रमाण हैं, जिनमें भारतीय समाज का एक विराट संयुक्त हृदय बोलता है।

इस काव्य-संग्रह की कविताओं का समय इस सदी के सातवें दशक से लगाकर वर्तमान दशक तक है। यह समय जितना भारतीय समाज के निर्माण में, आगे बढ़ने के समय के रूप में दिखाई देता है, उतना ही यह तनाव, त्रास और बेचैनी से भरा हुआ समय है। इन कविताओं में भारतीय मनुष्य की बेचैनी खासतौर से चित्रित हुई है। एक शिक्षित, संस्कारित एवं संवेदनशील व्यक्ति भारतीय समाज में बढ़ती समृद्धि के बावजूद इस बात से पीड़ित अनुभव करता है कि नदियां, खेतों-खलिहानों की अनदेखी और उपेक्षा करती हुई ग्लेशियर हिमखण्डों के गीत गाती हैं। नदियों का, व्यवस्था एवं राजसत्ता के रूप में प्रतीकात्मक प्रयोग रतनलाल शान्त की कविता का वैशिष्ट्य है, जो एक रूपक के रूप में एक अच्छी कविता का अंश बनकर इन शब्दों में प्रकट होता है–

खेतों खलिहानों को इशारा नहीं करतीं।
अब नदियां
ग्लेशियरों हिमखण्डों के गाकर रह जाती हैं गीत।
हरियाली इनकी आंखों में नहीं दिपती
चोटियां इनकी तनी भौंहों में उभरती हैं।
नहीं झलकती इनमें दूब की मुस्कराहट
बल्कि जंगली पेड़ों का
विशालकाय रौब।
उफनता है इनमें बाढ़ का प्रकोप
किनारों से कंधे सटाए दोस्ती का अभिनय
तथा पैरों तले की मिट्टी का क्षय।

इन कविताओं में पेड़, प्हाड़ बसंत आदि प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से अपने समय के प्रति असंतोष और अलगाव प्रकट हुआ है। हमारे देश में जो राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था और वातावरण बना है, उसमें एक ईमानदार और भले आदमी के निरंतर टूटते चले जाने की इतिहास-गाथा ही निर्मित होती है। यही इन कविताओं की केंद्रीय अन्तर्वस्तु है, जो स्वाधीनता के बाद लिखी गई हिंदी-कविता के अनुरूप है। कविवर शांत 'बसंत'

में हुए ऋतु परिवर्तन को देखकर कहते हैं कि मौसम जरूर नया है, लेकिन इसकी खबरें वही पुरानी हैं। खबरों का संदर्भ देकर अपने मन की बात को कहने का यह अनूठा ढंग हैं–

छपी पंक्तियां एक एक कर उखड़ आती हैं
और मुझ पर गिरती हैं आड़ी-तिरछी
हंसती हैं मुंह बिसूरती हैं
और मुझको चुभती हैं–नए मौसम में/पुरानी खबरें।

इस संग्रह की कई कविताएं जम्मू, श्रीनगर और इलाहाबाद जैसे प्रसिद्ध शहरों की जिंदगी के बारे में कवि के भावों-विचारों को व्यक्त करती हैं। कवि का अपना शहर श्रीनगर है, जिसे वह कविता में 'मेरा शहर' कहता है। इन कविताओं में भी कवि के भीतर का असंतोष और अपने समय के प्रति तनाव और त्रास का बोध केन्द्र में है। वह अपने शहर की स्थितियों में विषादग्रस्त है। कोई गहरी मानवीय पीड़ा है, जो उसे भीतर से तोड़ती है। वह अपने शहर की स्थितियों, उस शहर श्रीनगर की स्थितियों का, जो इस धरती का स्वर्ग कहा जाता रहा है, चील, कौए और चुगलखोर चिड़िया के प्रतीकों में चित्र खींचता है, जो किसी भी कोण से जीवन के उल्लास को व्यक्त नहीं करते। भविष्य में घटित होने वाले दुस्स्वप्न की वह जैसे 1976 ई० में ही आहट पा लेता है। अपने समय का अशुभ और अमंगलकारी संकेत इन पंक्तियों में अपनी सजीवता, सप्राणता एवं सटीकता में व्यक्त हुआ है–

वे/इसके स्वागत में फैल जाती हैं
गलियों में
यह ब्राह्ममुहूर्ती चील की आंखों से
सूखी जमीन के चकत्ते देखता है
चुगलखोर प्रभाती चिड़िया सा फुदकता है
और ढीठ कौए सा पैर रखता जाता है
छींटों से दामन बचाता हुआ
अपनी ही गलियों में।

इस काव्य-संकलन की अन्तिम छब्बीस कविताएं कश्मीरी पंडितों के कश्मीर से निर्वासन की पीड़ा को व्यक्त करने वाली महत्त्वपूर्ण कविताएं हैं। जैसा कि मैंने पहले कहा है कि अपने समय के इन्सानियत विरोधी रुख के प्रति यह कवि उसी समय से बेचैन है, जब से कि उसने कविता लिखना आरंभ किया। उसके भीतर असंतोष और त्रास का भाव बहुत पहले से है। वह अपने प्रदेश में अलगाव की पीड़ा को पहले से ही भोग रहा है। पूंजीवादी सत्ताओं का चरित्र, सामाजिक विभाजन और अलगाव की बुनियाद पर टिका होता है। हम

देखते हैं कि यह बात अकेले कश्मीर में ही नहीं, पूरे भारत में है। केवल वोटों के बल पर चलने वाली राजनीति का केंद्रक तोड़ने वाला होता है, जोड़ने वाला नहीं। इस राजनीति में मनुष्य को जितना छोटा, अनुदार और संकीर्ण बनाया जा सकता है, उतना सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र, भाषा, शहर, गली-मौहल्ले का नाम लेकर बनाया जाता है। स्वार्थ की पगडंडियों पर चलने और चलाने वाली व्यवस्थाएं और व्यक्ति जब अपनी-अपनी सफलताओं का दंभ लेकर आत्मविज्ञापन की सारी सरहदें लांघ जाते हैं तो सार्थकता इसी तरह व्यथित व बेचैन होती है, जैसी कि इन कविताओं में है। निर्वासन की पीड़ा भोगने वाले एक कवि की इन कविताओं में एक लम्बी कविता ''कोई मेरा घर देख आए'' स्मृति के दंश को व्यक्त करती है। कवि की यह समझ बिल्कुल सही है कि-

गोली और थैली के उलझे दायरों के बीच
घिर गया है मेरा घर...

इस लम्बी कविता में कवि का मन उन सभी निर्वासितों की व्यथा का प्रतिनिधि बनकर आया है, जो उस पीड़ा को भोग रहे हैं। लेकिन कवि की विशेषता यह है कि उसने अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहीं अपना संयम नहीं खोया है। इसके विपरीत 'पोथियां' कविता में वह अपने इस विश्वास को दृढ़ता से व्यक्त करता है कि वह अपने कश्मीर को इस तरह न भूलेगा और न उसे छोड़ेगा।

कश्मीर
तुम मुझे तार तार कर सकते हो
पन्ना पन्ना बिखेर सकते हो
पर मैं टुकड़ा टुकड़ा समेट कर जियूंगा
फिर सम्पूर्ण हो जाऊंगा
और तुम्हें फिर पाऊंगा।

आशा और उम्मीद का यही स्वर इन कविताओं की शक्ति है। इन कविताओं में व्यक्त असंतोष और गहरे पीड़ाबोध के बावजूद कवि का बौद्धिक आत्मसंयम कहीं शिथिल नहीं हुआ है। कविता के कलात्मक रचाव में भी कविवर शान्त ने ढील नहीं आने दी है। बस, भाषायी मुहावरे और उसकी रवानगी में एक अहिंदी भाषी को जिस तरह की बाधा आती है, वह कहीं-कहीं इनमें जरूर दिखाई देती है। कुल मिलाकर, हिंदी-काव्य जगत में इस कविता-संग्रह का हार्दिक स्वागत होगा, ऐसी मुझे उम्मीद है।

संपर्क : 1/4 'मुक्तिबोध' अरावली विहार, अलवर (राज.)